❀ श्रीराम प्रियायै नमो नमः ❀

❀ श्रीरामानन्द साहित्यमाला ४७ वां पुष्प ❀

श्रीदीक्षा-पद्धतिः

लेखकः—

अवधकिशोरदास "श्रीवैष्णव"

श्रीजनकपुर धाम।

सीता शरण 'मधुकर'

श्री सद्गुरु सदन

गोला घाट श्री अयोध्या जी

Scanned by CamScanner

श्रीसीतारामीय स्वामी श्रीमथुरादासजी महाराज

कटाव (धरणीधर द्वारा) विरचित ग्रन्थ

१- कल्याण कल्पद्रुम २।।)	१२- श्रीवैष्णवजन गुज०) ।।)
२- पंच संस्कार १।।)	१३- भारतीय महापुरुष अमूल्य
३- गीतागुह्यतमोपदेश १)	१४- साचूँ तप (गुज०) ,,
४- आदर्श योगी ।।)	१५- मनप्रबोध माला =)
५- श्रीराममंत्रराज परम्परा	१६- दुर्व्यसनों थीं बचो,
६- भक्ति मकरन्द	**अप्रकाशित**
७- प्रातःकालीन प्रार्थना	१७- विनयशतक पद्य हिन्दी
८- (गुजराती)	१८- अर्थपंचक ,, ,,
९- सुमन संचय १)	१९- ,, गद्य गुजराती)
१०- श्रीरामानन्द संकीर्तन =)	२०- उपदेशआनन्द हिंदी पद्य
११- मोक्ष के अधिकारी =)	

श्रीमहाराज जी के विषय में—

१- युगद्रष्टा सन्त २- जयगुरुदेव ३- सद्गुर-स्मरणम्।

पं० श्रीअवधकिशोरदासजी के अप्रकाशित ग्रन्थ

१- प्रेम-पंचामृत (संवाद)	६- प्रेमनिधि प्रार्थना माला
२- श्रीभरद्वाज मुनि प्रणीत वेद पाद स्तोत्र सटीक	७ आचार्य तत्त्व
	८- मंदिर का पुजारी
३- श्रीरामनाम नौका अनुष्ठान	९- सन्त मंदाकिनी
४- प्रतिष्ठा सर्वस्वम्	१०- मधु संचय
५- प्रेमनिधि संकीर्तन माला	११- व्रतोत्सव-चन्द्रिका

Scanned by CamScanner

❀ श्रीराम प्रियायै नमो नमः ❀

❀ श्रीमते रामानन्दाय नमः ❀

श्रीरामानन्द साहित्य माला ४७ वां पुष्प,

श्रीदीक्षा-पद्धतिः

श्रीसम्प्रदायानुकूल सुन्दर शास्त्रीय

दीक्षा-पद्धति का विवेचन

रचयिता—

श्रीसीतारामीय १ ८ स्वामी श्रीमथुरादासजी महाराज

चरणाश्रित--अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव

श्रीरामानन्दाश्रम, जनकपुर धाम

श्रीरामानन्द सं० ६६०

विक्रम सं० २०१६

प्रथम संस्करण

मू० १) रुपया

प्रकाशक:-

श्रीरामानन्द-आश्रम

जनकपुर धाम

पो० जयनगर जि० दरभंगा

मुद्रक:—श्रीहनुमत प्रेस श्रीअयोध्याजी।

❀ श्रीजनकनन्दिन्यै नमः ❀

❀ प्रारम्भिक-प्रवचन ❀

दीक्षा के विषय में एक सुन्दर पद्धति श्रीसम्प्रदायानुकूल लिखने के लिए कई प्रेमी सन्त बार-बार प्रेरणा करते थे, मैं कई कारणवश उस कार्य को नहीं कर सका, आज प्रभु की अपार दया से 'पद्धति' तैयार होकर आपके करकमलों में समर्पण कर रहा हूँ। यह तो आपकी जानी सुनी वस्तु है, मैंने तो केवल अपनी अज्ञता अथवा अहम्मन्यता ही दिखाई है, दीक्षा के विषय में ऐसा साम्प्रदायिक संग्रह और कोई दृष्टिगोचर नहीं हुआ, प्रस्तुत पुस्तक उस साहित्यिक अभाव को पूर्ण करने में कुछ सहायता अवश्य करेगी। मेरे पास जो साहित्य यहां (जनकपुर में) था उसी में से चुनकर यह प्रबंध बाँधा गया है विशेष दूसरे संस्करण में सन्तों की आज्ञानुसार घटाया-बढ़ाया जायगा, अभी तो इसी से सन्तोष मानकर इस अकिञ्चन दासको अनुगृहीत करेंगे। साथ ही शिष्यों को इस पद्धति से दीक्षा प्रदान करने करवाने का आदेश देकर शास्त्रीय प्रथा का विस्तार करेंगे तो मैं अपना श्रम सफल मानूँगा।

श्रीरामानन्दाश्रम
जनकपुर धाम
सं० २००३, विजयादशमी

सन्त चरणरेणु—
अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव

Scanned by CamScanner

❀ श्रीजानकीवल्लभाय नमोनमः ❀

* श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

श्रीदीक्षा-पद्धतिः

(अथ प्रथमोऽध्यायः)

❀ मंगलाचरणम् ❀

श्रीरामं जानकीदेवीं हनूमन्तं शुकं तथा ।
रामानन्दादि पूर्वार्यान् प्रणमामि पुनः पुनः ॥ १ ॥

दीक्षा श्रीराममन्त्रस्य दत्वा सम्यग्विधानतः ।
येनमामुद्धृतो वन्दे तं गुरुं मथुराभिधम् ॥ २ ॥

धन्या श्रीवैष्णवी दीक्षा धन्या वात्सल्यता गुरोः ।
धन्यास्ते कृतिनःलोके ये लभन्ते षडक्षरम् ॥ ३ ॥

पूर्वाचार्यानुगां पुण्यां दीक्षायाः पद्धतिं शुभाम् ।
वेद शास्त्रानुकूलाञ्च वक्ष्ये श्रीरामतुष्टये ॥ ४ ॥

—ग्रन्थकर्तुः

Scanned by CamScanner

❋ दीक्षा की आवश्यकता ❋

भगवान् प्रेम के भूखे हैं, वे बाह्य वेष या आचार व्यवहार की अपेक्षा नहीं रखते हैं, तब गुरुदेव के द्वारा दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता ? कल्याण तो उनके भजन से होता है, फिर वह भजन-भाव-कुभाव किसी प्रकार क्यों न हो ? प्रभुका मार्ग तो विधि निषेध से पर है, फिर विधि पूर्वक दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता ? गोपियाँ और राक्षस भी भजन से तर गये हनुमानादिक वानर भी। उन्होंने कहां दीक्षा ली थी ? स्त्रियों के लिये तो "पतिरेव गुरुः स्त्रीणां" कहा गया है, तब अन्य गुरु करने की क्या आवश्यकता ? ब्राह्मणों को गायत्री उपदेश होता ही है तब 'न गायत्र्याः परो मन्त्रः' रहते हुये दूसरा मन्त्र लेने की क्या आवश्यकता ! स्त्री और शूद्रों को वैदिक कर्म का अधिकार नहीं. है तब परम वैदिक वैष्णव धर्म में वे दीक्षित कैसे हो सकते हैं ? दीक्षा के सम्बन्ध में ये सभी प्रश्न प्रमुख हैं अतएव बार-बार पूछे जाते हैं, आइये आज इन पर कुछ विचार किया जाय।

(१) भगवान् प्रेम के भूखे हैं, अतएव अत्यन्त प्रेमावेशी भक्त की अधिकारी अनधिकारी दशा का विचार किये बिना ही अपना लेते हैं, क्योंकि प्रेम ही समस्त अधिकार प्राप्त करने योग्य स्वयं बना देता है। परन्तु जब तक उतना दृढ़ प्रेम नहीं हुआ है तब तक प्रेम प्राप्ति के साधन जो भग-

ब्रह्मप्रेमियों ने स्वयं अनुभव कर लोक कल्याणार्थ अनुष्ठान करने का उपदेश किया है। उन्हें अपना लेना प्रेमभिक्षुकों का कर्तव्य बन जाता है, क्योंकि भगवन्मार्ग अचिन्त्य है हम अपने अनुमान और तर्कों के सहारे उस मार्ग में नहीं चल सकते।

अचिन्त्या खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत् ।
अप्रतिष्ठित तर्केण कस्तीर्णः संशयाम्बुधिम् ॥

शास्त्र उपदेश देते हैं कि—'हमारे तुच्छ तर्क जो महा समुद्र के एकतरङ्ग की ठोकर से टूट जाने वाले हैं उनके सहारे संशय रूपी समुद्र से कौन पार उतरा है? कोई नहीं, अतएव हमारे मन-बुद्धि-इन्द्रियादिक की शक्ति से परे जो अचिन्त्य भाव हैं उनको तर्कों के साथ जोड़ देने की मूर्खता नहीं करनी चाहिये।'

आप्तोपदेश प्रत्यक्षमनुमानं च युक्तिकम् ।
चतुर्विधा परीक्षा स्यात् आप्तवाक्यमशंशयम् ॥
अतीन्द्रिय सुसंवेद्यान् भावान् ये दिव्यचक्षुषा ।
पश्यन्ति वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते ॥

किसी वस्तु का निर्णय करने के लिये प्रमाण चार प्रकार के माने गए हैं। प्रत्यक्ष १ अनुमान २ युक्ति ३ और आप्त वाक्य ४ उनमें सन्देह रहित दृढ़ प्रमाण आप्त पुरुषों का वचन ही है। आप्त कहते हैं जो अतीन्द्रिय भावों को दिव्य चक्षुओं

Scanned by CamScanner

से भली-भांति यथावत् देखते हैं। उनका वचन कभी अनुमानादिक तीन प्रमाणों से बाधित नहीं होता। इसीलिए हमारे श्रीसम्प्रदायाचार्य महर्षिप्रवर श्रीबौधायन मुनि ने कहा है कि—

धर्मशास्त्र रथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः।
क्रीडार्थमपि यं ब्रूयुस्स धर्मः परमोमतः॥

धर्म का मार्ग सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, हमारी मति क्षुद्र है, अतएव हमें प्रभु प्यारे लोकोपकारी ऋषि-आचार्य-सन्त और शास्त्रों के सहारे ही इस मार्ग में चलना चाहिये, प्रभु अकस्मात दयापरवश किसी अनधिकारी को अपना लें इसलिए पाप ही करने से प्रभु मिलते हैं ऐसा सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता और किसी प्रेमीजन पर कृपाकर विधिविहीन से प्यार करलें इसलिए शास्त्र विधि पुरस्सर साम्प्रदायिकता छोड़ देनेसेही प्रभु मिलते हैं ऐसा भी नही कहा जा सकता है, प्रभु सर्वतन्त्र स्वतंत्र हैं. वे अधिकारी को भी सहसा न मिलें और अनधिकारी को भी अपना लें उनकी इच्छा पर निर्भर है, फिर भी 'श्रुतिस्मृतिममैवाज्ञा' कहकर उसको न मानने वाला 'न मे भक्तः न मे प्रियः' का आदेश भी उन्हीं का दिया हुआ है, इसलिए अमुक को बिना दीक्षा के ही प्रभु मिले हैं अतः शास्त्र-सन्त और प्रभु की आज्ञा होते हुए भी हम दीक्षा न लेकर प्रभुका भजन करेंगे तो भी हमें प्रभु मिल जायँगे, ऐसी भावना रखने वाले अवश्य ही अपना मार्ग भूलते हैं। आप चाहे जैसे प्रेमी हों परन्तु अदीक्षित रहेंगे तब सन्तों की और सद्गुरु की पूर्ण

Scanned by CamScanner

कृपा कभी प्राप्त न कर सकेंगे। कितनी भाव रहस्यपूर्ण बातें अवैष्णव जानकर सन्त भक्त आपसे छिपावेंगे। एक कन्या का एक पुरुष के प्रति कितना भी प्रेम हो परन्तु जब तक कन्या वैवाहिक बन्धन में नहीं बंध जाती तब तक उस पुरुष की सम्पूर्ण सम्पत्ति का वैधानिक अधिकार उसे कभी प्राप्त नहीं हो सकता। उसी प्रकार शास्त्रीय विधि पूर्वक श्रीवैष्णवी दीक्षा पुरःसर प्रभु शरण न हो जाय तब तक जीव भगवत्सम्पत्ति का अधिकारी नहीं बन सकता। सुनिये श्रीशंकरजी पार्वतीजी को क्या उपदेश देते हैं—

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकम्।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षा हीनो मृतो नरः

—पद्मपुराण, उत्तर खं० अ० २२

जपस्तपो व्रतं तीर्थं यज्ञो दानं तथैव च।
गुरु तत्त्वमविज्ञाय सर्वं व्यर्थं भवेत्प्रिये॥

—स्कन्द पुराण,

धर्मार्थकाम मोक्षाणामालयः साम्प्रदायिकः।
सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते निष्फलामताः॥
यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाऽथ बलेन वा।
पत्रेस्थितं च गाथां च तं जनयेदनर्थकम्॥

—बृद्ध गौतमः,

Scanned by CamScanner

अदीक्षित का किया हुआ सभी निरर्थक हो जाता है, हे पार्वति ! दीक्षा हीन मर कर पशु जन्म लेता है । जप-तप-व्रत-तीर्थ-यज्ञ-दान आदि सब कुछ श्रीसद्गुरु-तत्त्व जाने बिना हे प्रिये व्यर्थ हो जाता है। धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष का घर विशुद्ध साम्प्रदायिकता ही है, सम्प्रदाय विहीन सभी मन्त्र निष्फल ही माने जाते हैं । जहाँ तहाँ से सुना हुआ छल या बल से प्राप्त-पुस्तक में लिखा और कथा वार्ता में सुना हुआ मन्त्र अनर्थकारी भी होता है, अतः शास्त्रविधि पूर्वक मन्त्र-लेना ही परमोत्तम है ।

श्रीहनुमानजी ने स्वयं श्रीजानकीजीसे दीक्षाप्राप्तकर सुग्रीवादिक सभी को दीक्षित किए थे, यह बात संग्रह ग्रन्थों में प्राप्त होती है। सदाशिव संहिता में यह बात आई है। राक्षस तो विपरीत मार्ग से लीलाविभूति के पात्र थे, भगवदिच्छा से लीला-सिद्धि के लिये ही ऐसा किया था, गोपियाँ तो परमभक्त अतएव वैष्णव महासंस्कार प्राप्त थीं, व्रजवासी सभी दीक्षित थे, पुराणादि में ऐसी बात आती है । ध्रुव-प्रह्लाद-अम्बरीष आदि सभी वैष्णव अतएव दीक्षित थे । ऋषि भी सभी दीक्षित थे यदि ऐसा न होता तो अगस्त्य-हारीत-पाराशर-वशिष्ठ वाल्मीकि आदि मुनियों ने अपनी संहिताओं में श्रीवैष्णव महासंस्कारों का वर्णन ही न किया होता । साम्प्रदायिक संग्रह ग्रन्थों में यह तत्त्व सन्तों ने भली भाँति दिखाया है, वेदों ने भी दीक्षा का बड़ा महत्व माना है—

Scanned by CamScanner

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

—शुक्लयजुर्वेद १९-३०

दीक्षा तपसो तनूरसि, तां त्वा शिवां शग्मां ।
परिदधे, भद्रं वर्णं पुष्यन् ॥

—शुक्ल यजुर्वेद, ४--२

वैष्णवो भवति विष्णुर्वै यज्ञः स्वयमेवैनम् ।
तद्देवतया स्वेन छंदसा संवर्द्धयति ॥

—ऐतरेय ब्राह्मण, अ० ३ खं० ४

नाना प्रकार का व्रत करने पर धर्मवृद्धि की इच्छा वाला दीक्षा प्राप्त करता है, दीक्षा से सत्पुरुषों की अनुकूलता प्राप्त होती है, उनकी अनुकूलता से श्रद्धा प्राप्त होती है और श्रद्धा वाला परमसत्य प्रभु को प्राप्तकर लेता है। दीक्षा तू तप का ही शरीर है, शान्त और सुखद तुमको मैं धारण करता हूँ, मेरा वर्ण भद्रता बढ़ाने वाला हो।

जो वैष्णव हो जाता है स्वयं विष्णु ही उसको अपनी महान् शक्ति से सुन्दर रूप में बढ़ाते हैं।

अब दीक्षा लेने की आवश्यकता पर धार्मिक सज्जनों को कोई सन्देह नहीं रहना चाहिए। अन्य शंकाओं का निराकरण इस प्रकार करना चाहिये—

※ स्त्रियों को भी दीक्षा विधान ※

"पतिरेवगुरुः स्त्रीणां" "भर्तानाथो गुरुर्भर्ता" इत्यादि प्रमाण स्त्री का सर्वाधिक आदर भाव पतिमें होने के लिये ही कहे गए हैं। यथार्थतः तो आत्मा पति पुत्र-ब्राह्मण शूद्र-रंक-राजा-काला-गोरा-मोटा-दुबला आदि भेद से पृथक् है, इसीलिए भागवतमें वैदर्भी को पतिविरह छुड़ाने के लिए कहा गया है कि:-

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः।
कस्य के पति-पुत्राद्याः मोह एव हि कारणम् ॥

(भाग० ८। १६। १६)

इस मोह को सांसारिक विषय विलासी पुरुष 'जो स्त्री को अपनी गुलामी से छुड़ाकर प्रभु सेवा का सुख देना भी नहीं चाहता' कैसे छुड़ा सकता है, और जो अज्ञानान्धकार को नष्ट न करे वह गुरु कैसा ? इसीलिये सज्जन पुरुष अपनी पत्नी को सद्गुरु के द्वारा मंत्रदीक्षा दिलवा कर लोक परलोक में कल्याणकारी बनते हैं, शास्त्रों का भी ऐसा ही उपदेश है—

पतिव्रता महासाध्वी ममभक्तिरता सदा।

—स्कान्दोक्त मार्ग० मा० ११। ७।

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः।
लोकाश्चाण्डाल पर्यन्ता सर्वेऽप्यत्राधिकारिण ॥

—अगस्त संहिता, ८। १५।

मन्त्रसंस्कार सिद्धयर्थं मन्त्रदीक्षाविधिं तथा।
उद्वाह समये स्त्रीणां पुंसां चैवोपनायने ॥

— पाराशर स्मृति उत्तर खंड, १। २२

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रास्तथाऽपरे।
तस्याधिकारिणः सर्वे सत्वशील गुणा यदि ॥

— बृद्ध हारीत स्मृति. अ० ६। ६

स्त्रिया सहैव कर्तव्यं गृहस्थस्य विधानतः।
संस्कार पञ्चकं येन भवेत्साधर्म चारिणी ॥

— बृहद्ब्रह्म संहिता तथा शांडिल्य स्मृति

इत्यादि सैकड़ों प्रमाण दिए जा सकते हैं। भगवद्धर्म से प्रतिकूल पति की आज्ञा न होने पर भी प्रभु भक्ति कर अपना आत्म कल्याण साधने वाली सतियों के सैकड़ों दृष्टान्त मिलते हैं, याद रहे सामान्य धर्म से विशेष धर्म सदा बलवान है, विशेष धर्म का पालन करने में सामान्य धर्म रहे तो भी वाह-वाह है और न रहे तो भी वाह वाह।

तस्माच्चक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेद्विज।
सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात् ॥

— बृ० हारीत स्मृति अ० २ श्लोक ३३

ब्राह्मण क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो नारी तथेतरः।
चक्राद्यैरंकयेद् गात्रं आत्मीयस्याखिलस्य च ॥

—भरद्वाज संहिता अ० ३ श्लोक ५६

Scanned by CamScanner

ब्रह्म क्षत्र विशः शूद्राः स्त्रियश्चान्तरजास्तथा ।
सर्वं एव प्रपद्येरन् सर्वं धातारमच्युतम् ॥
न जातिभेदं न कुलं न लिंगं न गुण क्रियाम् ॥
न देशकालौ नावस्थां योगो ह्ययमपेक्षते ॥

— भरद्वाज संहिता अ० १ श्लोक १५

पद्मपुराण उत्तर खंड अ० २८१ श्लोक ६ में तो भोलानाथ भगवान् शंकर ने स्वयं पार्वतीजी के प्रश्न करने पर कहा है कि—

गुरूपदेश मार्गेण पूजयित्वैव केशवम् ।
प्राप्नोति वांछितं सर्वं नान्यथा भूधरात्मजे ॥
कृतकृत्योऽस्म्यहं भद्रे! वैष्णव्या भार्यया त्वया ।
गुरुणा तव चावंङ्गि वामदेवेन धीमता ॥

श्रीशंकरजी के इस प्रकार भाव प्रकट करने पर श्रीगिरिजाजी वामदेव के पास जाती हैं और प्रार्थना करतीं हैं—

भगवँस्त्वत्प्रसादेन सम्यगाराधनं हरेः ।
करिष्यामि द्विजश्रेष्ठ! त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥
इत्युक्तस्तु महादेव्या वामदेवो महामुनिः ।
तस्यै मन्त्रवरं श्रेष्ठं ददौ स विधिना गुरुः ॥
दीक्षिता गुरुणा तेन वामदेवेन धीमता ।
पूजयित्वा नमस्कृत्य पुनरायात्स्वमालयम् ॥

Scanned by CamScanner

इससे यह स्पष्ट हो गया कि स्त्रियों को भी मंत्र दीक्षा देने की पुरातन पद्धति है। इसी प्रकार ब्राह्मण-शूद्र-स्त्री-चांडाल मनुष्यमात्र प्राणीमात्र प्रभु शरणागति के अधिकारी हैं, यह भी शास्त्रीय वचनों में प्रसिद्ध है तो भी सामाजिक विडम्बना ग्रसित हृदय संकुचित विचार रखकर पामर जीवों को प्रभु शरणागति प्रदान न कर उनके उद्धारका द्वार बंधकर देतेहैं यह एक विचारणीय विषय है। वैष्णव ग्रन्थों में सैकड़ों प्रमाण मिलते हैं जिनमें स्त्री-शूद्र-अन्त्ज एवं प्राणिमात्र को दीक्षा देकर अवश्य कृतार्थ करने की बात कही गयी है, जिज्ञासुओं को मूलग्रन्थ देखकर संशय निवृत्त कर लेना चाहिए।

❋ ब्राह्मणों को वैष्णवी दीक्षा ❋

शास्त्रकारों ने जहां दीक्षा प्रकरण लिखा है वहां अधिकारी अनधिकारी का विचार किया है, उसमें ब्राह्मण को दीक्षा का सर्व श्रेष्ठ अधिकारी बनाया है, इसी से ब्राह्मण को वैष्णवी दीक्षा लेना चाहिए यह सिद्ध हो जाता है, प्रभुने गीता में स्पष्ट आज्ञा की है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥
किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।
अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥

— ९ अ० ३३

इसमें ब्राह्मण को अवश्य ही भगवान् के शरण दीक्षा विधिपूर्वक जाना और अनित्य लोक के लौकिक कर्मों की आशा त्याग कर भजन करने का आदेश प्रभुने दिया है।

सर्वं धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

—गीता १८। ६६

इस वचन में भी प्रभु ने अन्य ब्राह्मणादि धर्म की ममता त्याग कर सर्व श्रेष्ठ शरणागति ग्रहण करने का उपदेश दिया है। इसके विपरीत अवैष्णव को पाखण्डी माना है—

अवैष्णवास्तु ये विप्राः पाषण्डास्ते नराधमाः।
तेषां तु नरके वासः कल्पकोटि शतैरपि॥

बृद्ध हारीत स्मृति, १। २५

हरेरभक्तो विप्रोऽपि विज्ञेयः श्वपचाधिकः।
हरिभक्तः श्वपाकोऽपि विज्ञेयो ब्राह्मणाधिकः॥

—पद्मपुराण, क्रियायोगसार १६। ३

चाण्डालोऽपि मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिकः।

—नारदीयपुराण, पूर्वभाग अ० ३४। ४१

विष्णुमन्त्र विहीनेभ्यो द्विजेभ्यः श्वपचोवरः।

- ब्रह्मवैवर्त प्रकृति खंड अ० ५७। १

विप्राद् द्विषड् गुणयुतादरविन्दनाभ
पादारविन्द विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।

Scanned by CamScanner

मन्ये तदर्पित मनो वचने हितार्थ
प्राणं पुनाति सकुलं न तु भूरिमानः ॥

भाग० ७ स्कंध ६ अ० १०

प्रभु भक्त चाण्डाल से भी अभक्त ब्राह्मण को पतित बतलाया है, यदि ब्राह्मण भक्त न हो तो वह स्वयं नहीं तर सकता है जबकि भक्त चाण्डाल कुल समेत तर जाता है इसलिए ब्राह्मण को अवश्य वैष्णवी दीक्षा लेनी चाहिए क्योंकि—

सुतीक्ष्ण ! मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते ।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्त सौरेष्वभोष्टदः ॥
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः ।

—अगस्त्य संहिता १६ अ० १ । २ ।

राममन्त्र विहीनानां शुद्धकर्मवतामपि ।
विफला हि क्रियाः सर्वा इति वेदेषु कथ्यते ॥

- वाल्मीकि संहिता, २ अ० १४

श्रीरामचन्द्रमनुस्मरणेन गायत्र्याः शतसहस्राणि जप्तानि फलानि भवन्ति । प्रणवानामयुतकोटि जपफलानि भवन्ति। इति श्रुतिः ।

इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि सबको श्रीराम मन्त्र लेने पर ही गति प्राप्त होती है, इसीलिए काशी में श्रीशंकरजी सबको अन्त में श्रीराम मंत्र देकर मुक्त करते हैं—

Scanned by CamScanner

अत्र हि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे। येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षी भवति

उत्तर रामतापनी उपनिषद् ४ श्रुतिः

अवैष्णव मन्त्र लेने से गति नहीं होती, अतएव विप्रादि सभी मनुष्यमात्र को परमगति प्राप्त करने के लिए श्रीवैष्णवी दीक्षा लेनी चाहिए—

अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण न परागतिः।
पुनश्चविधिना सम्यक् वैष्णवाद्ग्राहयेन्मनुम् ॥
सहस्रशाखाध्यायी च सर्व यज्ञेषु दीक्षितः।
कुले महति जातोऽपि न गुरुःस्यादवैष्णवः॥

पद्मपुराण उत्तर खंड, २५४ अ० २।३।

दीक्षान्तर शतेनापि नैतत्फलमवाप्यते।
दीक्षितेष्वपि सर्वेषु रामदीक्षित उत्तमः॥

--अगस्त्य संहिता ६ अ० २८।

अवैष्णव मन्त्रों से गति नहीं है,पुनः वैष्णवमंत्र लेने का शास्त्र उल्लेख करते हैं, हजारों शाखाओं का वेद पाठी-महाकुलवान-सभी यज्ञों का आचार्य भी अवैष्णव हो तो मोक्ष प्रद गुरु नहीं हो सकता, सैकड़ों मन्त्रों की दीक्षा लेने पर भी वह फल नहीं मिलता जो श्रीराम मन्त्र की दीक्षा से मिलता है अतएव शास्त्रविधि पूर्वक दीक्षा अवश्य लेना चाहिए। ब्राह्मण चतुर्थाश्रम में गायत्री त्याग कर ब्रह्मरत होता है और

Scanned by CamScanner

"राम एव परब्रह्म" वैदिक सिद्धान्त है अतः गायत्री मन्त्रोपदेश के बाद श्रीवैष्णवी दीक्षा लेना सर्वथा संगत है।

गायत्री और प्रणव चित्तशोधक एवं प्रज्ञावर्धक मन्त्र हैं चित्त शुद्ध होने पर ही भगवत्स्वरूप जानने की जिज्ञासा पैदा होती है, भगवत्तत्त्व जानने के लिये महाभागवत आचार्य के शरण जाकर दीक्षा लेनी पड़ती है, अतएव ऐसी शंकायें छोड़ कर श्रद्धा समेत वैष्णवी दीक्षा ले लेना ही उचित है।

* दीक्षा शब्द का अर्थ *

दीयते ज्ञान सम्बोधः क्षीयते पापसंचयः।
दीयते क्षीयते यस्मात्सा दीक्षेत्यभिधीयते ॥

—स्मृति रत्नाकरः पृ० २६

जो दिव्य ज्ञान देकर पापों का क्षय करदे उसे दीक्षा कहते हैं, ऐसा दिव्य प्रभाव श्रीवैष्णवी दीक्षा में है।

* दीक्षा--प्रदाता *

अवैष्णवाद्गुरोर्मन्त्रं यः पठेत् वैष्णवो द्विजः।
कल्पकोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्निा ॥

बृद्धहारीत स्मृतिः अ ४। २७

सद्धर्मशासको नित्यं सदाचार परायणः।
सम्प्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते ॥

पद्मपुराण पाताल खंड ८२ अ० ८।

जो अवैष्णव गुरु से वैष्णव मंत्र लेता है वह नरक में जाता है इसलिये वैष्णवधर्मशासक- सदाचार परायण-सम्प्रदायी कृपापूर्ण और विरागी को ही गुरु करना चाहिए।

न जातु मन्त्रदा नारी न शूद्रो नान्तरोद्भवः।
नाभिशप्तो न पतितः कामकामोऽप्यकामिनः॥

भारद्वाज संहिता १ अध्याय में लिखा है कि नारी-शूद्र-अन्त्यज-अभिशापित-पतित आदि कामी और अकामी कैसे भी हों मन्त्र न देवें। परन्तु आज तो 'मारग सो जा कहँ जो भावा' हो रहा है यह ठीक नहीं है।

पाषाणस्य यथा नौका न तरेन्नच तारयेत्।
गृही गुरुर्न कर्तव्यः न तरेन्नैव तारयेत्॥

– नारद गीता, ६ श्लोक

विना व्याकरणाद्वाणी व्यञ्जनं लवणंविना।
वैष्णवेन विना दीक्षा तथैव शृणु नारद॥

नारद गीता, १३ श्लोक

रोग ग्रस्तो यथा वैद्यः पररोग चिकित्सकः।
तथा गुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थः स्याद्विडम्बना॥

देवीभागवत १ स्कंध १४। ४४

पत्थर की नौका न तरेगी और न तारेगी, वैसे गृहासक्त गुरु भी न तरेगा और न तारेगा, व्याकरण के बिना वाणी शुद्ध नहीं होती। लवण के विना व्यञ्जन फीके रहते हैं वैसे ही अवैष्णवी दीक्षा है।

रोग ग्रस्त वैद्य दूसरे की क्या दवा करेगा, उसी प्रकार गृहस्थ गुरु संसार से तारे यह विडम्बना ही है अतएव त्यागी सन्त श्रीवैष्णव ही दीक्षा देनेवाले आचार्य हो सकते हैं।

महा भागवतं तत्र आचार्यं संश्रयेत्सुधीः।
अर्थपञ्चकतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः।
आकारत्रय सम्पन्नास्ते वै भागवतोत्तमाः॥

—नारद पञ्चरात्र

महाभागवत श्रीवैष्णवआचार्य का ही आश्रय सुन्दर बुद्धिवाले सज्जनों को करना चाहिए। अर्थपञ्चक का तत्त्व जानते हों, पञ्चसंस्कारों से संस्कृत हो और आकारत्रयरहस्य को भलीभांति जानें वे ही महाभागवत वैष्णव कहलाते हैं।

महाभागवतः श्रेष्ठो ब्राह्मणो वै गुरुर्नृणाम्।
सर्वेषामेव लोकानामेष पूज्यो यथा हरिः॥

महाभागवत श्रेष्ठ ब्राह्मण ही मनुष्यों का गुरु है, वही सबके लिये भगवान् के समान पूज्य है, यह पद्मपुराण का वचन है।

याद रहे ब्रह्मविद्या प्रदाता आचार्य ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ है और वे भी-अपने समान वर्ण या निम्नवर्ण को दीक्षा दे सकते है, भगवदीय दिव्यशक्ति सम्पन्न अवतारी आचार्यों की बात दूसरी है उनकी देखा-देखी करना हमारे लिये उत्तम नहीं है देखिए शास्त्र क्या कहते हैं—

Scanned by CamScanner

'क्षत्र-विट्-शूद्र जातीयः प्रातिलोम्यं न दीक्षयेत्'
वर्णोत्तमेऽथ च गुरौ सविता विश्रुतेऽपि च ।
स्वदेशतोऽथवान्यत्र नेदं कार्यं शुभार्थिना ॥
विद्यमाने तु यः कुर्यात् यत्र तत्र विपर्ययम् ।
तस्येहामुत्र नाशत्स्यात् तस्माच्छास्त्रोक्तमाचरेत् ॥
—हरिभक्ति विलासोद्धृत नारद पञ्चरात्रीय

क्षत्रिय वैश्य और शूद्र जाति वालों को अपने से ऊँचे वर्ण वालों को दीक्षा न देनी चाहिए । अपने से उत्तम वर्ण वाला श्रेष्ठ आचार्य अपने पास गांव या देश में कहीं हो तो स्वयं दीक्षा न देवे, अगर उत्तम आचार्य के रहते भी स्वयं अभिमानवश जो दीक्षा देता है वह लोक परलोक नाश करता है अतः शास्त्रोक्त व्यवहार से ही कार्य करे ।

ब्राह्मणस्सर्वकालज्ञः कुर्यात्सर्वेष्वनुग्रहम् ।
तदभावे द्विजश्रेष्ठः शान्तात्मा भगवन्मयः ॥
भावितात्मा च सर्वज्ञश्शास्त्रज्ञः सत्क्रियापरः ।
सिद्धित्रय समायुक्त आचार्यत्वेऽभिषेचितः ॥
क्षत्र-विट्-शूद्रजातीनां क्षत्रियोऽनुग्रहेक्षम ॥

सर्वोत्तम तो यही है कि महाभागवत वैष्णव ब्राह्मण हो सब पर अनुग्रह कर मंत्रदीक्षा देवे, यदि ऐसे ब्राह्मण का अभाव हो तब शान्त-भगवन्मय-परमभावुक-सर्वशास्त्रज्ञ-सदाचार-निष्ठ-सिद्धित्रय सम्पन्न-अपने आचार्य और वैष्णव सन्तों

Scanned by CamScanner

द्वारा आचार्यत्त्व के लिये चुना हुआ क्षत्रिय अपने स्वजाती और वैश्य शूद्रों को मन्त्र दे सकता है। ऐसे क्षत्रिय के अभाव में ऐसा वैश्य अपने स्वजाती और शूद्रों को एवं ऐसे वैश्य के भी अभाव में शूद्र अपने स्वजातीयों को मन्त्र दे सकता हे।

याद रहे—यह व्यवस्था योग्य आचार्य के अभाव में है, योग्य आचार्य पासमें देशमें या दूरदेश में मिलने पर भी उनके पास ही दीक्षा लेनी और दिलानी चाहिये. अपने स्वयं गुरु बनकर पुजाने की लालच में जो अन्यथा विपरीत आचरण करते हैं वे "उभय लोक निज हाथ नसावहिं" ही चरितार्थ करते हैं।

❋ दीक्षा लेने वाला अधिकारी ❋

ब्रह्म-क्षत्र-विशः शूद्राः स्त्रियश्चैवान्त्यजास्तथा ।
सर्व एव प्रपद्येरन् सर्व धातारमच्युतम् ॥
बाल मूक जडान्धाश्च पङ्गवो बधिरास्तथा।
सदाचार्येण सन्दिष्टाः प्राप्नुवन्ति परां गतिम् ॥

—भरद्वाज संहिता

इत्यादि प्रमाणों से सभी भगवत्पथ के अधिकारी हैं, यह मार्ग-जाति चिन्ह-गुण-क्रिया-देश काल आदिका विचार बन्धन नहीं रखता, यहाँ तो हृदय की श्रद्धा चाहिये, शिष्य में इतने गुण चाहिये—

आस्तिको धर्मशीलश्च शीलवान् वैष्णवःशुचिः ।
गंभीरश्चतुरो धीरः शिष्य इत्यभिधीयते ॥
यस्त्वाचार्य पराधीनस्तद्वाक्य शासने हृदि ।
शासनेस्थिर वृत्तिश्च शिष्यः सद्भिरुदाहृतः ॥

पद्मपुराण, उ० खंड २५१ अ० ५३

जो आस्तिक हो, धर्मशील हो, शीलवान्-पवित्र-एवं वैष्णवहो, गंभीर-धीर और चतुर हो उसको शिष्य बनावे । जो गुरु की आज्ञा में रहे उनका शासन हृदय में आदर रखकर माने, और शासन में दृढ़ वृत्ति से रहे, विचलित न हो वह योग्य शिष्य है, । ऐसे शिष्य को भी—

परीक्ष्य शिष्यं समुपासकं गुरु—
वर्षं समभ्यर्च्य हिरण्यरेतसम् ।
तप्तेन चापेन शरेण शोभने
दिने दयापूर्णमनाः समङ्कयेत् ॥

श्रीवैष्णवमताब्ज भास्करः ६२ ।

उपासक शिष्य की वर्ष पर्यन्त खूब परीक्षा करके तब विधि पूर्वक धनुर्बाणादि तप्तमुद्रा छाप आदि पञ्चसंस्कार देवे। संक्षेपतः शिष्य में ये गुण होने चाहिये —

सद्बुद्धिः साधुसेवी समुचित चरितस्तत्त्वबोधाभिलाषी—
शुश्रूषुस्त्यक्तमानः प्रणिपतनपरः प्रश्नकाले विनीतः ।

Scanned by CamScanner

शान्तो दान्तोऽनसूयुः शरणमुपगतः शास्त्र विश्वासशाली-
शिष्यः प्राप्तः परीक्षां कृतविदमभिमतं तत्त्वतः शिक्षणीयः ॥

जो सद्बुद्धि वाला हो, साधु-सेवी हो, सदाचारी हो, तत्त्व बोध का अभिलाषी हो, सेवा करने वाला हो, स्वयंअमानी हो, अपराध होने पर चरणों में गिरकर क्षमा मांगने वाला हो, विनयभाव से बात पूछने वाला हो, शान्त हो, जितेन्द्रिय हो, ईर्षाद्वेष रहित हो, शरण आया हो, शास्त्र वचनों में विश्वासी हो, वस्तु समझने वाला हो, कृतज्ञ हो, परीक्षा में प्रसन्न हो, ऐसे शिष्य को उपदेश देवें।

आजकल्ह बिना परीक्षा किये ही झटपट चेला मूँड़ लिया जाता है जिससे धर्मको निन्दा होती है, योग्य गुरुको योग्य ही शिष्य चुनना चाहिये और "वरमेको गुणीपुत्रो" याद रखना चाहिये। जैसे सैकड़ों तारा चन्द्रमा जैसा प्रकाश नहीं कर सकते वैसे सैकड़ों नालायक चेला एक लायक के समान नहीं हो सकते। अयोग्य को मन्त्र देने में भारी दोष है,—

* दीक्षा के अनधिकारी *

अयोग्याय न दातव्यो मन्त्रराजस्त्वया सुत!
अलसं-मलिनं-क्लिष्टं दंभ-मोह समन्वितम् ॥
दरिद्रं-रोगिणं-क्रुद्धं-रागिणं-भोगलालसम्।
असूया-मत्सर-ग्रस्तं-शठं-परुष वादिनम् ॥

अन्यायेनाऽर्जितधनं-परदाररतं-सदा ।
विदुषांवैरिणं-दुष्टमज्ञं-पंडितमानिनम् ॥
भ्रष्टव्रतं-क्लिष्टव्रतिं-पिशुनं-पापमानसम् ।
बह्वाशिनं-क्रूरचेष्टमग्रगण्यं-दुरात्मनम् ॥
कृपणं-पापिनं-रौद्रमाश्रितानां भयङ्करम् ।
एवमादि गुणैर्युक्तं शिष्यंनैव परिग्रहेत ॥
आमात्यदोषो राजानं जाया दोषः पतिं यथा ।
तथा शिष्यकृतोदोषो गुरुं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

स्कन्दपुराण वैष्णवखंड मार्गमाहात्म्य अ० १६
श्लोक ६१ से ४७

अर्थ सरल है, आजकल्ह ये दुर्गुण प्रायः पाये जाने पर भी लोभ लालच वश मंत्र दीक्षा दे देते हैं फिर "लोभी गुरु लालची चेला। दोनों नरक में ठेलं ठेला" कहावत् सिद्ध होती है। इस विषय पर ज्यादा देखना हो तो 'आचार्यतत्त्व' 'गुरुरहस्य' 'श्रीरामनवरत्न' 'पञ्चसंस्कार' 'कल्याणकल्पद्रुम' आदि ग्रन्थ देखने चाहिये। ये दुर्गुण गुरु में हो तो वैसा गुरु भी न करना चाहिये और शिष्य में हो तो वैसा शिष्य भी न करना चाहिए। इसलिए 'सम्यक् परीक्ष्य दातव्यं मासंषट् मास वत्सरम्' १०६ (तेजोबिन्दूपनिषद् अ० ६) 'संवत्सरं तदर्धंवा मासत्रयमथापि वा' 'आचार्यं संश्रयेत् वाऽथ वत्सरं सेवयेद् द्विजः। तस्य वृत्तिं परिज्ञात्वा मन्त्रमध्यापयेद् गुरुः॥ (पद्मपुराण, उत्तर खंड २५४ अ० श्लो० ७।) इत्यादि वचनों

Scanned by CamScanner

से शास्त्रों ने स्पष्ट आदेश दिया है फिर भी विना परीक्षा किये लोग 'पागल के हाथ हीरा' देकर नष्ट करवाते हैं। याद रहे-

'राज्यं दद्यात् धनं दद्यान्नतुदद्यात् षडक्षरम्'

—सदाशिव संहिता

ऐसी महँगी वस्तु आज कौड़ी के मोल वेचते हैं। धन्य कलि तेरी लीला। मैंने भी अनधिकारियों को मन्त्र देकर खूब दुःख भोगा है और जो ऐसा करते हैं या करेंगे वे भी भोगेंगे।

❋ दीक्षा कब लेनी चाहिये ❋

अगस्त्य संहिता अ० १७ श्लोक ५ से १३ तक

वसन्ते दीक्षयेत् विप्रं ग्रीष्मे राजन्यमेव च।
शारदे समये वैश्यं हेमन्ते शूद्रमेव च।
स्त्रियं च वार्षिकेकाले दीक्षयेद्यत्नतोगुरुः॥

— इति ऋतवः।

मधुमासे भवेद्दुःखं माधवे रत्नसञ्चयः।
मरणं भवतिज्येष्ठे ह्याषाढे बन्धुदर्शनम्॥
समृद्धिः श्रावणेनूना भवेद् भाद्रपदेक्षयः।
प्रजानामाश्विनेमासि सर्वतःशुद्धिमेवहि॥
ज्ञानं स्यात्कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवत्यपि।
पौषेज्ञानक्षयोमाघे भवेन्मेधा विवर्धनम्॥
फाल्गुने च समृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्जयेत॥

—इति मासः।

रवौ-गुरौ-सिते सोमे कर्तव्यं बुध शुक्रयोः ।

—इति वारः

अश्विनी-रेवती-स्वाती-विशाखा-हस्तभेषु च ।
पुष्यः शतभिषाचैव श्रवणाद्रा धनिष्ठका ॥
ज्येष्ठोत्तरा त्रयेष्वेव कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ।

— इति नक्षत्राः ।

पूर्णिमा-पञ्चमीचैव द्वितीया-सप्तमी तथा ।
द्वादश्यामपि कर्तव्यं षष्ट्यामपि विशेषतः ॥
त्रयोदशी च नवमी प्रशस्ता सर्वकामदाः ॥

—इति तिथयः ।

पञ्चाङ्गशुद्धि दिवसे स्वोदये तिथिवारयोः ।
गुरुः शुक्रोदयेशुद्धः लग्ने द्वादश शोधिते ॥
चन्द्रतारानुकूले च शस्यते सर्व कर्मसु ॥

—इति पञ्चाङ्गावलोकनम् ।

अपने सम्प्रदायानुसार परम्परानुकूल मन्त्र लेवे । ब्राह्मण को वसन्त ऋतु, क्षत्रिय को ग्रीष्म, वैश्य को शरद्, शूद्र को हेमन्तः, और स्त्रियों को वर्षा ऋतु मन्त्र ग्रहण के लिये उत्तम है। चैत्र में दुःख, वैशाख में धन संग्रह, जेठ में मरण, असाढ़ में प्रिय मिलन, श्रावण में सम्पत्ति की वृद्धि, और भादौं में दीक्षा लेने से धनक्षय होता है। आश्विन में सभी प्रकार की शुद्ध प्रजा प्राप्ति-कार्तिक में ज्ञान और अगहन में दीक्षा लेने

से सुख बढ़ता है। पौष में ज्ञान का क्षय, माघ में सद्‌बुद्धि की वृद्धि, और फागुन में मन्त्र लेने से समृद्धि बढ़ती है, मलमास वर्जित है।

अश्विनी रेवती-स्वाती-विशाखा-हस्त-पुष्य-शतभिषा श्रवण। आर्द्रा-धनिष्ठा-ज्येष्ठा और उत्तराफाल्गुनी-उत्तराषाढ़ा एवं उत्तरा भाद्रपद ये नक्षत्र मन्त्रदीक्षा के लिए उत्तम हैं।

पूर्णिमा-पञ्चमी-द्वितीया-सप्तमी-द्वादशी षष्ठी-त्रयोदशी और नवमी ये तिथियां विशेषतः सभी काम पूर्ण करने वाली एवं उत्तम हैं। पञ्चाङ्ग शुद्ध दिनमें इन बातोंका विचार करते हुए मुहूर्त्त निकाले, उदयातिथि और बार नक्षत्र ग्रहण करे,गुरु और शुक्र अस्त न हों, चन्द्रतारा अनुकूल एवं लग्न अच्छा हो ऐसे शुभ मुहूर्त में मन्त्र ले। हम साधारण तुच्छ बातों के लिए कितना विचार करते हैं तब इस महामन्त्र की दीक्षा में विचार क्यों न करें ? विशेष समय –

सूर्यग्रहण काले तु नान्यदन्वेषणं भवेत् ।
सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन ॥
तत्रयद्यत्कृतं सर्वमनन्त फलदं भवेत् ।
न मास तिथिवारादि शोधनं सूर्यपर्वणि ॥
ददातीष्टं गृहीतं तु तस्मिन्काले मुनीश्वर ।
सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य अनायासेन वेगतः ।
अतस्तत्रैव रामस्य मन्त्रतीर्थाभिषेचनम् ॥

—अगस्त्य संहिता, अ० १७। १४—१७ तक

Scanned by CamScanner

सूर्य ग्रहण के समान महाश्रेष्ठ समय और कोई नहीं है। उसमें जो कुछ करो अनन्त फल देने वाला हो जाता है, मास-तिथि-वार-नक्षत्रादि शोधन की कोई आवश्यकता सूर्यग्रहण में नहीं रहती है, उसदिन लिया हुआ मन्त्र अतिशीघ्र इष्ट फल अनायास ही दे देता है, इसलिए श्रीराम मन्त्र उस दिन लेना चाहिए। श्रीशंकरजी को इसी दिन ब्रह्माजी से श्रीराम मन्त्र मिला था।

पुण्यतीर्थे च गङ्गायां लोलार्के सूर्यपर्वणि।
तस्मै मन्त्रवरं प्रादान्मन्त्रराजं षडक्षरम्॥

—अगस्त्य संहिता, ७ अ० १५

❋ दीक्षा के लिए अन्य शुभ अवसर ❋

चैत्रशुक्ल नवम्यां वा कार्तिकी पूर्णिमा दिने।
सीताजन्म दिनेचापि विवाह दिवसे शुभे॥
राज्याभिषेक काले वा श्रीरामविजये दिने।
अन्ये शुभे च काले वा सुदीक्षां धारयेत्सुधीः॥

—सनत्कुमार संहिता अ० ६ श्लोक २--३

चैत्रशुक्ल नवमी, (श्रीरामनवमी), कार्तिकी पूर्णिमा, श्रीजानकी नवमी, (वैशाखशुक्ल नवमी), श्रीरामविवाह (अग-हन शुक्ल पञ्चमी), राज्याभिषेक तथा श्रीराम विजया दशमी (दशहरा) अथवा अन्य बसन्त पंचमी, अक्षय नवमी, अक्षय-

तृतीया, गुरुपूर्णिमा, रथयात्रा, दीपावली श्रीरामानन्द जयन्ती, अनन्त चतुर्दशी आदि शुभ अवसरों पर सुन्दर श्रीराम मन्त्र की दीक्षा ग्रहण करें।

यह तो हुई शास्त्रीय व्यवस्था, इस प्रकार का शुभ मुहूर्त मिले तो भी और न मिले तो भी 'आर्तानां नियमोनास्ति' सिद्धान्तानुसार कलियुग के दुःखार्दित आर्तजीव जब चाहें और जहां चाहें भगवच्छरण जा सकते हैं, उनके लिये शास्त्रकारों ने द्वार खोल रखा है यथा—

इदमद्यकृतं कार्यं श्वोऽन्यत्कार्यं करिष्यते।
इति लोके स बलवान् कृन्तान्तो न समीक्ष्यते॥
तस्मात्कार्यं शुभंशीघ्रं विलम्बे न तु योजयेत्॥

आज इसने यह काम किया है और कल्ह यह दूसरा काम करने वाला है ऐसा विचार कर बलवान् काल किसी को छोड़ नहीं देता इसलिए विलम्ब किये बिना 'शुभस्यशीघ्रम्' कर लेना ही उत्तम है।

* दीक्षा का सबसे सुन्दर समय *

ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये क्षेत्रे वा दिवसे निशि।
आगच्छति गुरुर्देवात्तदा दीक्षां प्रकारयेत्॥
यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुसारतः।
न तीर्थं न व्रतं होमो न स्नानं न जपः क्रिया॥

तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षाऽवसरो महान् ।

गाँव में, जंगलमें, खेतमें, दिनमें या रातमें, अपनी इच्छा से श्रीगुरु महाराज जब आ जायें तभी दीक्षा प्रदान करें। जब इच्छा हो गुरु आज्ञानुसार दीक्षा ले लेवे । जब श्री गुरु आज्ञा मिल जाय वही दीक्षा का सर्व श्रेष्ठ समय है, फिर न तो तीर्थ व्रत और होम की आवश्यकता रह जाती है और न स्नान-जप-क्रिया आदि की ।

काल दष्टं जराग्रस्तं नानाव्याधि समन्वितम् ।
भय मोहातुरं क्लिष्टं सद्यो दीक्षां प्रदापयेत् ॥

अर्थ सरल है । यथार्थतः श्रीरामशरणागति के लिये तो विशेष विचार की आवश्यकता ही नहीं है, पूर्व कथित सब नियम अन्य मन्त्रों के लिए हैं, लोक संग्रह एवं शास्त्र मर्यादा संरक्षण के लिए सन्तों ने भी मान लिए हैं, परन्तु सुन्दर योग की प्रतीक्षा में विना दीक्षा के ही मर जाना अत्यन्त खराब है। इसलिए पूर्व कथित योग मिलें तो अत्युत्तम और न मिले तो—

तदेवलग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापतेर्नाम यदा स्मरामि ॥

—आनन्दरामायण, जन्मकांड ६ सर्ग ६३

योग मुहूरत लगन-ग्रह 'तुलसी' गनत न काहि ।
राम भये जेहि दाहिने सकल दाहिने ताहि ॥

मानकर शीघ्र ही प्रभु को आत्म समर्पण कर श्रीवैष्णव धर्म में दीक्षित हो जाना चाहिए ।

* दीक्षा के लिए सुन्दर स्थान *

अयोध्यायां चित्रकूटे विदेहनगरेऽथवा ।
रामधाम्नि तथा चान्ये यद्वा श्रीराममन्दिरे ॥

—सनत्कुमार संहिता, ६ अ० ४ श्लोक ।

भगवत्सन्निधानेव राममन्त्रस्य दीक्षया ।
दीक्षणीयः सदा शिष्यो विरागी निश्चलोऽनघः ॥

—वाल्मीकि संहिता अ० ६ श्लोक ५४

अयोध्या-चित्रकूट-जनकपुर-प्रभु के अन्य पावन धाम-श्रीराम मन्दिर और सन्त एवं सद्गुरु के पुण्याश्रम ही दीक्षा के लिये उत्तम स्थान माने गए हैं। अन्यत्र भी कहीं दीक्षा देनी हो तो निष्पाप और शान्तचित्त विरागवान् शिष्य को प्रभु के श्रीशालिग्रामादिक विग्रह रामायणादि सद्ग्रन्थ तुलसीबन-हनुमान्जी का स्थान नदी-तालाब-कन्दरा या सन्त भक्तों के सामने दीक्षा देनी चाहिए।

* आचार्य-महत्व *

आचार्यवान् पुरुषोवेद (छान्दोग्योपनिषद् ६अ० १४खंड)

यस्यदेवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ अ० २३ मन्त्र ।

Scanned by CamScanner

मन्त्रे-तीर्थे-द्विजे-देवे-दैवज्ञे-भेषजे-गुरौ ।
यादृशी भावना स्वीया सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

—आनन्दरामायण, मनोहरकांड ६ सर्ग २२७।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् ।
नमर्त्यबुद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥

—भागवत, ११ स्कंध १७ अ० २७ श्लोक ।

कोऽपि रक्षाकरो नास्ति गुरो संरुष्टतांगते ।
ततः सर्व प्रयत्नेन प्रसाद्यो गुरुरञ्जसा ॥

— वाल्मीकि संहिता, ६ अ० ४८ ।

मन्त्रे तद्देवतायां तथा मन्त्रप्रदे गुरौ ।
त्रिषु भक्तिः समाकार्या साहि प्रथमसाधनम् ॥

— जयाख्यसंहिता. ३

गुरु बिनु भवनिधि तरै न कोई । जो विरंचि शंकर सम होई ॥
जे गुरु चरण रेणु शिर धरहीं । ते जनु सकल विभव वश करहीं ॥
जे गुरु पद अम्बुज अनुरागी । ते लोकहुं वेदहुँ बड़भागी ॥

—श्रीरामचरितमानस,

वेगि विलंब न कीजिय लीजिय उपदेश ।
महामन्त्र सो जपहु जो जपत महेश ॥

— विनय-पत्रिका,

आचार्य संश्रयाच्चैव जीवोबंधाद्विमुच्यते ।

—श्री अनन्तानंद स्वामी प्रणीत 'सिद्धान्तदीपक'

इत्यादि-इत्यादि सैकड़ों प्रमाण हैं, जो संग्रह ग्रन्थों में पूर्वाचार्यों ने कृपाकर उद्धृत कर दिए हैं मुमुक्षुओं को चाहिए उन श्रीवैष्णव धर्म पोषक साहित्य को खोजकर ध्यान लगाकर प्रेम से पढ़ें और अपना आत्मकल्याण साधैं।

॥ दीक्षा हीनों को चेतावनी ॥

ते नराः पशवोलोके किं तेषां जीवने फलम्।
यैर्नलब्धा हरेर्दीक्षा नार्चितः जगदीश्वरः॥

—स्कन्दपुराणे,।

नाहमिज्या प्रजातीभ्यां तपसोपशमेन च.।
तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा॥

—भागवत, १० स्कंध ८० अ० ३४।

मन्त्ररत्नेन रहितं ब्राह्मणं दूरतस्त्यजेत्।

—पाराशरधर्मशास्त्र उत्तर खंड अ० ३।१६।

श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्।
वैष्णवो वर्णबाह्योऽपि पुनाति भुवनत्रयम्॥
यो न धारयतेमर्त्यो मामकं चिन्हमीदृशम्।
तं त्यजामि दुरात्मानं मदीयाज्ञाति लंघिनम्॥

—ब्रह्मरात्रे श्रीमुखवचनम्

नास्तियेषां गुरुर्नृणां नारीणां वापि मंत्रदः।
न तेषां वदनं वीक्ष्यं गतिश्चैषां न विद्यते॥

—पद्मपुराण

वे मनुष्य पशुवत् हैं, उनका जीवन निष्फल है, जिन्होंने वैष्णवी दीक्षा लेकर जगदीश्वर की पूजा नहीं की है। प्रभु कहते हैं—मैं अन्य यज्ञ-जप-तप इन्द्रियनिग्रहादिक साधनों से उतना प्रसन्न नहीं होता जितना सद्गुरु की सेवा से प्रसन्न होता हूँ। मन्त्र रत्न की दीक्षा रहित ब्राह्मण को दूर से त्याग दें। लोक में अवैष्णव ब्राह्मण चाण्डाल के समान है (यह मांसाहारी ब्राह्मणों के लिए कहा है) और भक्त चाण्डाल भी तीनों भुवन को पवित्र कर देता है। जो मेरा यह विरद नहीं धारण करता उस दुरात्मा को मैं त्याग देता हूं, वह मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाला है। ❀

अब दीक्षा के विषय में प्रायः जानने लायक सभी बातें समझ में आ गयीं होंगी अतएव विधिपूर्वक पञ्चसंस्कार ग्रहण करनेकी शास्त्रीय विशुद्ध पद्धतिका वर्णन किया जाताहै।

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

❀ यक्ष-राक्षस-भूत-वेताल की पूजा करने वाले घोर नरक में जाते हैं, अतः वैष्णव इनकी पूजा कभी न करें, और बलि-दानादि देकर पूजा करने वाले भी शुद्ध वैष्णव बनकर अपना कल्याण साधें—

ब्रह्म राक्षस वेताल भूतानामर्चनं नृणाम्।
कुम्भीपाक महाघोर नरकं प्राप्ति साधनम्॥
कोटि जन्मकृतं पुण्यं यज्ञ ज्ञान क्रियादिकम्।
सद्यः सर्वं लयं याति यक्षभूतादि पूजनात्॥

—पाद्मोत्तर खण्डे अ० २५३ श्लोक ९६-९७।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

* श्री श्रियैनमः । श्रीरामायनमः । श्रीसद्गुरुवेनमः *

* दीक्षा का प्राथमिक ज्ञान

दीक्षा विषयकानेकान् विषयान्वक्ष्यतत्त्वतः ।
वक्ष्यामि वैष्णव प्रीत्यै द्वितीये शास्त्र सम्मतः ॥ १ ॥
तापादि पञ्चसंस्कारान्यथा दद्यान्मुमुक्षवे ।
सद्गुरुस्तत्क्रमो ह्यत्र सम्प्रदायानुसारतः ॥ २ ॥

ग्रन्थ कर्तुः

श्रीवैष्णवी दीक्षा दुर्लभ है, सद्गुरु की कृपा दुर्लभ है, भगवद्भक्तों की प्राप्ति दुर्लभ है भगवद्भजन और प्रभु सेवाका लाभ परम दुर्लभ है। चाहें तो इस विषय पर सैकड़ों शास्त्रीय प्रमाण संग्रह कर ग्रन्थ विस्तार किया जा सकता है, हमारे पूर्वाचार्य भगवत्पाद स्वामी श्रीअनन्तानन्दजी ने भी यही कहा है—

भगवद्धर्मतत्त्वज्ञाः पञ्चसंस्कार संस्कृताः ।
प्रपन्ना निर्भरा रामे वैष्णवाभुविदुर्लभाः ॥

—सिद्धान्त-दीपक, १७।

सभी सन्तों का यही निर्विवाद सिद्धान्त है, इस दुर्लभ वस्तु को पाने के लिए दीक्षा की आवश्यकता पड़ती है जो प्रभु की दया से भगवत्स्वरूप आचार्य के अनुग्रहसे ही प्राप्त होती है।

Scanned by CamScanner

नादीक्षितः प्रकुर्वीत विष्णोराराधन क्रियाम् ।
श्रौतं वा यदि वा स्मार्तं दिव्यागम मथापि वा ।।

— वृद्ध हारीत स्मृति, ११-२४० ।

भगवत्पूजन संबंधी कोई भी काम विना दीक्षा के न करे चाहे वह किसी पद्धति से किया जाय विना दीक्षा के निष्फल हो जाता है । यहाँ तक कि –

विष्णुदीक्षा विहीनानां नाऽधिकारो कथाश्रवे ।

—भागवत माहात्म्य अ० ६

अतएव उस जगत्पाविनी प्रभु प्रिय दीक्षा के समय जो वैष्णव पञ्च महासंस्कार दिये जाते हैं जिन्हें पाकर नयाजीवन हो जाता है, जीवकृतार्थ एवं प्रभुधाम का अधिकारी हो जाता है, अब वे पंच संस्कार किस प्रकार देने चाहिये ? कैसे लेने चाहिये ? उसकी शास्त्रीय प्रणाली क्या है ? यह वर्णन किया जाता है । आशा है इससे वैष्णव जगत् को कुछ लाभ अवश्य होगा । और अन्य धार्मिक सज्जनों को भी एक सुन्दर तत्त्व समझने को मिलेगा—

दीक्षा लेने वाले को सर्व प्रथम यह समझना चाहिये कि आज महाभागवत-वैष्णव बनना है, वैष्णव माने जो स्वयं तरकर लोगों को संसार के दुःखों से तारे । इसीलिए कहा है कि-

आस्फोटयन्ति पितरः नृत्यन्ति च मुहुर्मुहुः ।
स्वकुले वैष्णवो जातः स नस्त्राता भविष्यति ।।

Scanned by CamScanner

हमें वैष्णव बनने के पहले वैष्णवोचित सद्गुणों से अलंकृत होना चाहिये, उनमें कुछ तो शिष्य लक्षण में आ गये हैं, कुछ और भी जानलें तो अच्छा, वे गुण इस प्रकार के हैं—

पूर्वभाषी- प्रसन्नात्मा-सर्वेषां वीतमत्सरः।
अनसूयो-गुणग्राही धार्मिको वैष्णवस्स्मृतः॥
समात्मा सर्वभूतेषु निजाचारादविप्लुतः।
विष्णवर्पिताखिलाचारः सहि वैष्णव उच्यते॥

—स्मृति रत्नाकरे स्कन्दवचनम्, पृ० १८।

अभिमान छोड़कर सदा प्रसन्न मनसे सबसे प्रिय और प्रथम ही आदर पूर्वक बोलने वाला, द्वेषरहित, गुणग्राही, धार्मिक, सभी पर समान भाव रखने वाला, अपने धर्माचरण में एकनिष्ठ और प्रभु की प्रसन्नता के लिये ही लौकिक-वैदिक सभी व्यवहारों को सावधानी से करने वाला मनुष्य श्रीवैष्णव है।

वैष्णवानां त्रयं कर्म दयाभूतेषु नारद।
श्रीगोविन्दे पराभक्तिस्तदीयानां समर्चनम्॥

वैष्णवों के तीन काम प्रधान है, सभी जीवों पर दया रखकर उनकी सेवा सहायता करना, प्रभु का पूर्ण प्रेमसे भजन करना और तदीय भक्त सन्तों की आराधना करना। बस, इन्हीं गुणों की प्राप्ति के लिए दीक्षित होना चाहिये, दीक्षा के पहले या पीछे इन गुणों को अपनाने पर ही पूर्ण वैष्णव कहा सकते हैं, अन्यथा तो वेषधारी-अधम-प्राकृत-धर्मध्वज एवं

Scanned by CamScanner

निन्दित वैष्णव कहाकर आत्म कल्याण से दूर ही रहना होगा। ये गुण सन्त और सद्गुरु की पूर्ण दया से ही प्राप्त होते हैं। "ये गुण साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई॥" सन्त तो दयालु होते ही हैं परन्तु दीन जन पर शीघ्र द्रवित होते हैं "गूढ़ौ तत्त्व न साधु दुरावहीं। आरत अधिकारी जहाँ पावहिं॥' इस तत्त्व को पाने के लिए सद्गुरु के शरण में आर्त बनकर "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" मैं आपका शिष्य हूं, शरणागत हूं, आप मुझ पर शासन करें और "यच्छ्रेयस्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्में" जिसमें मेरा कल्याण हो उस श्रेय पथ पर मुझे चलावैं। ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। वेद भी यही कहते हैं—

तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियम्।
ब्रह्मनिष्ठम् (मुण्डकोपनिषद् १ मु० २ खण्ड)

भागवत भी ठीक यही कहता है—

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयमात्मनः।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपसमाश्रयम्॥
तत्र भागवतान् धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्म दैवतः।
अमाययाऽनुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मदो हरिः॥

— भाग० ११ स्कंध ३ अ० २२।

तत्त्व जिज्ञासु आत्मकल्याण के लिये समिधादि पूजा सामग्री लेकर भगवन्निष्ठ वेद शास्त्र रहस्यज्ञ शिष्य की शंकायें

नष्ट करने में समर्थ गुरु के शरण जाय। वहाँ उनकी चरण सेवा करते हुए निःस्वार्थभाव से गुरुदेव में एकनिष्ठ श्रद्धा विश्वास रखकर भागवत (वैष्णव) धर्मों की शिक्षा प्राप्त करें। कहावत है कि—'गुरु करै जान के और पानी पिये छान के' इसलिये गुरुलक्षण आगे कहे गये हैं, कुछ यहां भी प्रसंगानुसार कहे जाते हैं—

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि मन्त्रदीक्षा विधिं पराम्।
आचार्यं संश्रयेत्पूर्वं मदाश्रयण सिद्धये॥
आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः।
मन्त्रज्ञो मन्त्रभक्तश्च सदामन्त्राश्रयः शुचिः॥
सत्सम्प्रदाय संयुक्तो ब्रह्मविद्या विशारदः।
अनन्य साधनश्चैव तथानन्य प्रयोजकः॥
ब्राह्मणो वीतरागश्च क्रोध लोभ विवर्जितः।
सद्व्रती शासिताचैव मुमुक्षुः परमार्थवित्॥
एवमादि गुणोपेत आचार्यस्स उदाहृतः।
आचाराञ्छासयेद्यस्तु स आचार्य इतीरितः॥

—पाद्मोत्तर खण्ड, २५१ अ० ४८ से ५२ श्लोक।

भगवान् ब्रह्माजी से कहते हैं हे पुत्र! मैं अब मंत्रदीक्षा की विधि बताता हूँ। मेरा आश्रय लेने के पहले जीव आचार्य के शरण जाय, आचार्य वेद सम्पन्न-विष्णु भक्त और अभिमान रहित होना चाहिए, मन्त्र-मन्त्रार्थ का जानने वाला,

Scanned by CamScanner

मन्त्र में पूर्ण श्रद्धा रखने वाला, मन्त्र का सदा आश्रयी और पवित्र होना चाहिये, वैदिक सत् सम्प्रदाय में दीक्षित-ब्रह्मतत्त्व जानने वाला, प्रभुका भजन छोड़कर अन्य साधनों का आसरा न रखने वाला और किसी निजी स्वार्थ प्रयोजन को छोड़कर शिष्य का हित करने वाला होना चाहिए। ब्राह्मणकुलका-वैरागी-काम, क्रोध, लोभ रहित-भगवान् के सुन्दर व्रत और महोत्सव करने वाला, शिष्य पर अपना शासन (प्रभाव) जमाने वाला, मुमुक्षु और परमार्थ जानने वाला होना चाहिए। उपर्युक्त गुण सम्पन्न स्वयं शास्त्रीय सदाचार जानकर तदनुकूल आचरण करता हो और दूसरों से सदाचार पालन करा सकता हो वहीं उत्तम आचार्य है। यदि ये सुन्दर गुण न हो तो वैसा गुरु न करे—

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विडम्बकः।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम् ॥
गुरवो बहवः सन्ति शिष्य सम्पत्ति हारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्य सन्ताप हारकम् ॥
भिन्ननावाश्रितस्स्तब्धो यथा पारं न गच्छति।
ज्ञान हीनं गुरुं प्राप्य कुतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥

—गुरुगीता, १७३ से

जो गुरु कहलाते हों पर तु झूठा बोलने वाले, धूर्त और मूर्ख ज्ञानहीन हों उनसे दीक्षा न लें, जो अपनी शान्ति नहीं कर पाये हैं वे दूसरों को कैसे शान्त करेंगे। धनके लुटेरे गुरुआ

तो बहुत घूमते हैं परन्तु शिष्य का सन्ताप हरने वाला एक भी गुरु मिलना दुर्लभ ही है। फूटी नाव पर बैठकर पार जाना चाहें तो कैसे जा सकेगा वैसे अज्ञानी गुरु के आसरे भवसागर कैसे तर सकेंगे। इसलिए सुपात्र को ही गुरु करे, सभी गुण नहीं तो अधिक गुण और अल्प दोष वाले अपने से श्रेष्ठ और पूज्य आचार्य का वरण करे। श्रीखोजीजी महाराज ने कैसा सुन्दर कहा है—

साधक सिध को एक मत, जित चालैं तित सिद्धि।
हरिजन चिन्ता ना करै, मुख आगे नव निद्धि॥
गुरु निर्लोभी चाहिये शिष्य न छाँडै प्रीति।
स्वारथ त्यागै हरि मिलै, यही भजन रस रीति॥

—उपदेश वल्लरी,

* सनत्कुमार संहिता का छठा अध्याय संग्रह ग्रन्थों में मिलता है, उसमें श्रीराममन्त्र दीक्षा की संक्षिप्त विधि सुन्दर रूप में बतलाई है उसी के आधार पर अन्य प्रामाणिक शास्त्र वचनों द्वारा विषय स्पष्ट करते हुए अब दीक्षा विधि का वर्णन किया जाता है।

---

* इसी 'सनत्कुमार-संहिता' का श्रीरामस्तवराजस्तोत्र परम प्रसिद्ध है, चौथे, सातवें और आठवें अध्याय के भी कुछ श्लोक मिलते हैं, मैंने मूल ग्रन्थ अभी तक नहीं देखा, परन्तु प्राप्त अंश श्रीरामोपासना का पूर्ण महत्व प्रकट करते हैं यदि किसी सज्जन के पास पूर्ण ग्रन्थ हो तो कृपया सूचना देंगे तो उसे प्रकाशित कराया जायगा जिससे सम्प्रदाय का उपकार हो।

Scanned by CamScanner

❋ ताप मुद्रा (धनुर्वाण) धारण विधिः ❋

युधिष्ठिर-उवाच—

धनुर्वाणादि चिन्हानां दीक्षा श्रीगुरुणा कृता।
कथं भवति लोकेऽस्मिन् कृपया वद मे मुने ॥ १ ॥

श्रीव्यास-उवाच—

बुधं वैराग्य संयुक्तं कामक्रोध विवर्जितम्।
परं तं राघवानन्यं वैष्णवं गुरु-दीक्षितम् ॥ ५ ॥
वर्णाश्रममनासक्तं निष्पापं वृणियाद्गुरुम्।
शुद्धः शौचादिभिर्भूत्वा गुरुं स्थाप्य शुभासने ॥६॥

धनुर्वाणादि भगवदायुधों के चिन्ह वाली दीक्षा कैसे लेनी चाहिये ? उसके उत्तर में श्रीव्यासजी कहते हैं कि-- गुरुदीक्षित -वैराग्यवान् विद्वान्--अनन्य श्रीरामभक्त--निष्पाप वर्णाश्रम धर्म में अनासक्त ऐसे गुरु का वरण करे। स्नानादिक कर्त्तव्यों से शुद्ध होकर सुन्दर आसन पर आदर पूर्वक श्रीगुरु देव को विराजमान करावे । स्नानादिक कर्त्तव्यों से शुद्ध होने की विधि शास्त्रों में इस प्रकार है

आत्मनः शुद्धिकामो वा भुक्ति मुक्त्यादि हेतवे।
दीक्षा-दानादि यज्ञेषु प्रागवपनं हि कारयेत् ॥

दीक्षा-दान-यज्ञ तीर्थ-श्राद्ध आदि भुक्ति मुक्तिप्रद शुभ कर्मों के प्रारम्भ में 'केशमूलानि पापानि' मानकर क्षौर कराना

चाहिए। बाद में पञ्चगव्य अथवा शुद्ध मृत्तिका सर्वाङ्ग में लगा कर पवित्र जल से स्नान करे। आजकल पञ्चगव्य प्राशन और पञ्चगव्य स्नान की प्रथा बिलकुल उठ गयी है, फैशनके शिकारी इसे हेय मान बैठे हैं, परन्तु यह उचित नहीं है, पञ्चगव्य में शरीर को शोधने के सभी वैज्ञानिक तत्त्व भरे हुए हैं, इसीलिए हमारे पूर्वजों ने सभी शुभ कार्यों में इसका प्रयोग अनिवार्य मान लिया है, मंत्र भी यही तत्त्व प्रगट करते हैं—

अग्रमग्रे चरन्तीनामौषधीनां रसं वने।
तासामृषभपत्नीनां पवित्रं कायशोधनम्।
तन्मे रोगांश्च शोकांश्च पापांश्चहर गोमय॥

इसमें इतना याद रखना कि वनमें चरने वाली एवं अनेकों औषधियों को खाने वाली गायों के गव्य में ही दैवी तत्त्व रहते हैं, शहर की गंदी चीजें खाने वाली गायों में वह तत्त्व नहीं रहता, यही कारण है कि ऋषियों ने सभी शुभकर्म वन-पर्वत नदी एवं पुण्य प्रदेशों में करने का शास्त्रों में विधान किया है। पञ्चगव्य इस प्रकार लेना चाहिए—

शकृद् द्विगुण गोमूत्रं सर्पि दद्याच्चतुर्गुणम्।
क्षीरमष्टगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि॥

—अत्रि-संहिता, १६६।

गोबर (गोबर का रस छान कर लेना चाहिये) से दूना गोमूत्र, गोमूत्र से दूना घी, घी से दूना दूध और दूध के बरा-

बर दही लेना चाहिए। श्रीराममन्त्र पढ़कर इन सबको लेना, मिलाना, पिलाना, और स्नान कराना चाहिये, अन्य वैदिक मन्त्र ये हैं—

'ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमही, धियो यो नः प्रचोदयात्।' इससे गोमूत्र लेवे,

'ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥'

इससे गोबर मिलावे

'ॐ आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यं भवा वाजस्य सङ्गथे।' इससे दूध मिलावे

'ॐ दधि क्राव्णोऽकारिषं जिष्णोरश्वस्यव्वाजिनः। सुरभि-नो मुखाकरत्प्राणाऽआयूँषि तारितत्।' इससे दही लेवे

'ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि ज्योतिरसि देवोवः सवि-ता पुनात्वच्छिद्रेण पशोः सूर्यस्य रश्मिभिः।' इससे घृत लेवे

'ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनो र्बाहूभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।' इससे कुशोदक लेवे

हमारे श्रीसम्प्रदायाचार्यवर्यशुकशिष्य श्रीबौधायन मुनि ने अपनी स्मृति में यही कहा है—

'गायत्र्याचैव गोमूत्रं 'गन्धद्वारे' ति गोमयम्।
'आप्यायस्वे' ति क्षीरं वै 'दधिक्रावेति' वै दधिम्॥

'तेजोऽसिशुक्र' मित्याज्यं 'देवस्यत्वा' कुशोदकम् ॥

—बोधायन स्मृति, ४ प्रश्न ५ अ०

परन्तु जिन्हें वैदिक मन्त्र आते नहीं हैं अथवा जिन्हें वैदिक मन्त्रों का सामान्य अधिकार नहीं है उन्हें श्रीराममन्त्र से ही सब क्रियायें करनी चाहिये। पञ्चगव्य के बाद शुद्ध-मृत्तिका से स्नान करे, उसका मन्त्र यह है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
शिरसा धारिता देवी रक्षस्व मां पदे-पदे ॥

* ॐ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शत बाहुना।
मृत्तिके हन मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥
त्वया हतेन पापेन जीवामि शरदः शतम् ॥

इसके बाद यह मन्त्र बोलकर स्नान करे—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनन्तु माम्।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पति र्ब्रह्मपूता पुनातु माम् ॥
यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वा दुश्चरितं मम।
सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च परिग्रहं स्वाहा ॥

---

* आज कलह के साबुन के शौकीन बाबू लोग मिट्टी से घृणा करते हैं परन्तु शुद्ध मृत्तिका के तत्वों को साबुन कहां से पायेगा अब मिट्टी के गुणों को लोग समझने का प्रयत्न करने लगे हैं, जो ऋषियों ने पहले ही समझे हैं।

Scanned by CamScanner

विशेष विधान दैनिक स्नान की भांति आचमन प्राणायाम-तीर्थावाहनादि सम्प्रदायानुसार जान लेना चाहिए। पुनः धनुर्बाणादि ताप संस्कार लेना चाहिये, क्योंकि सभी संस्कारों में यह प्रथम है—

तस्मात्तापादि संस्काराः कर्तव्या धर्मकांक्षिणा ।
अयमेव परोधर्मः प्रधानः सर्व कर्मणाम् ॥

—वृद्ध हारीतस्मृति, अ० १ श्लोक २८ ।

प्रथमं तापसंस्कारस्तापसै र्मुनिभिस्स्मृतम् ।
सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च द्विज सत्तमाः ॥

—पाराशर स्मृति, उत्तर खंड अ० १ श्लोक २० ।

दासी दासाश्च भृत्याश्च चिन्हिताश्चक्र वह्निना ।
शुद्धा भवन्ति विप्राणां परिचर्यादि कर्मषु ॥

बृहद्ब्रह्म संहिता, १ पाद ५ अ० १०२ ।

इससे सिद्धाहुआ कि तप्तमुद्रा सभी वर्ण, सभी आश्रमके नर-नारी और इतर वर्ण वाले सभी भगवद्भक्तियुक्तों को लेनी चाहिये, यहां तक कि पशु-पुत्र-गृह-वस्तु-ग्रन्थ आदि भी भगवदायुधों के चिन्ह से शोभित हों। इस विषय में विशेष वैष्णवों के संग्रह ग्रन्थों में देखना चाहिए।

ततो गुरुः शुभां वेदीं कृत्वा शास्त्र विधानतः ।
भ्रातृभिः सीतया सार्द्धं रामं संस्थाप्य पार्षदैः ॥७॥

विघ्नेशं रामभक्तञ्च सत्कृत्य वेद शासनात् ।
मुख्यं तु मारुतिं कृत्वा पुनः सर्वांश्च पूजयेत् ॥८॥
मन्त्रैस्सर्वोपचारैश्च यजेच्छिष्य सहैव च ।

इसके बाद गुरुदेव शास्त्रानुसार वेदी बनाकर भ्राता और पार्षदों समेत श्रीसीतारामजी को पधरावें पुनः रामभक्त परम वैष्णव श्रीगणेशजी का प्रथम पूजन करे, बाद में श्रीहनुमान्‌जी से लेकर सभी देवताओं का मन्त्रोपचार पूर्वक श्रद्धा समेत पूजन करे, बाद में अपने समस्त पूर्वाचार्यों का पूजन करे, और शिष्य यही समझे कि अशेष लोकशरण्य प्रभु श्रीगुरुदेव के द्वारा स्वयमेव कृपा करके आज मुझ अधम का उद्धार करते हैं, बाद में १श्रीसीतारामजी की महापूजा करे।

अथवा-सर्वेषां राममन्त्राणां मन्त्रराजः षडक्षरः ।
तारकं ब्रह्मवेदोक्तं तेन पूजा प्रशस्यते ॥

इस अगस्त्य संहिता अ० २७ श्लोक १२ के प्रमाण से श्रीराममन्त्रराज से ही पूजा करे। पुनः सभी को प्रणाम करे, प्रणाम करने के मन्त्र ये हैं—

ॐ श्रीसाकेताय भगवन्निलयाय नमोनमः ।
ॐ श्रीहनुमदादि भगवत्पार्षदेभ्यो नमः ॥

१-पूजा विधान स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी कृत 'भगवत्पूजनपद्धति' तथा 'श्रीरामार्चा कथामाहात्म्य' अथवा 'अगस्त्य संहिता' से जान लेना चाहिए ।

Scanned by CamScanner

ॐ श्रीशार्ङ्गादि भगवदायुधेभ्यो नमः ।

ॐ श्रीभगवत्परिवाराय नमोनमः ।

ॐ ब्रह्मा-वशिष्ठ-पराशर-व्यास शुक बौधायन प्रभृति श्रीरामानन्दाचार्यचरणादि निजगुरु पर्यन्त सर्वेभ्यो पूर्वाचार्येभ्यो नमोनमः ।

आचार्य इसके बाद शिष्य के शरीर का निम्न मन्त्रों से प्रोक्षण करे—

'ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधानत । महेरणाय चक्षसे । यो वः शिवतमोरसः । तस्य भाजयतेहनः । उशतीरिव मातरः । तस्मा अरंगमामवः । यस्य क्षयाय जिन्वथ । आपोजन यथा च नः । ॐ भूर्भुवःस्वरोम् ।

प्रत्येक टुकड़ा बोलकर तुलसीदल, कुश या दूर्वा से जल शिष्य के शरीर पर छींटे बाद में—

'ॐ नमो भगवते रघुनन्दनाय । रक्षोघ्नविशदाय । मधुर प्रसन्न वदनाय । बलाय । रामाय । विष्णवेनमः ।,

मन्त्र के प्रत्येक भाग (टुकड़ा) को बोलकर अभिमन्त्रित जल छींटे, इसके बाद—

ॐस्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्वेब्वेदाः । स्वस्तिनस्तार्क्ष्योअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्द्धातु ॥
ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवीशान्ति रापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्ति ब्रह्म

शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेवशान्तिः सामाशान्तिरेधि।

ॐ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।

शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः। सुशान्तिर्भवतु।

इन मन्त्रों से शान्ति पाठ पढ़कर तीन दफे आचमन करावे। श्रीरामायनमः। श्रीरामभद्रायनमः। श्रीरामचन्द्रायनमः। ये आचमन मन्त्र हैं। श्रीराघवेन्द्रायनमः। पढ़ कर हाथ धुलावे बाद में—

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम्।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनो हरिः॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव सीतापते र्नाम यदा स्मरामि॥

इनका भाव समझाते हुए शिष्य को सर्वथा विशुद्ध भाव होने का ज्ञान करावे। द्विजातियों को पुनः पुरानी यज्ञोपवीत बदलवाकर नयी जनेऊ पहरानी चाहिये। इसके बाद सङ्कल्प कराना चाहिये—

ॐ सर्वेस्वारम्भ कार्येषु त्रयास्त्रिभुवनेश्वाराः।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिम्ब्रह्मेशान जनार्दनाः॥

Scanned by CamScanner

"हरिः ॐ तत्सद् अद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्याज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे आर्यावर्ते भारतखण्डे पुण्यक्षेत्रे अमुक नाम संवत्सरे मासानां मासोत्तमे अमुक मासे अमुक पक्षे अमुकतिथौ अमुक नक्षत्रे अमुक वासरे अमुक गोत्रोत्पन्न अमुक नामाऽहं जन्ममरणादि भवरोग निवृत्त्यर्थे श्रीसद्गुरु कृपया सर्वेश्वर श्रीसीताराम परब्रह्म प्रीत्यर्थे सकलदुरित क्षय पूर्वक श्रीसीतारामशरणागति ग्रहणमहं करिष्ये।

यह संकल्प मन्त्र है। इसमें अमुक अमुककी जगह जो-जो तिथि नक्षत्रादि हों उन्हें पञ्चाग में देखकर बोलना चाहिये। अपना नाम और गोत्र बोलना चाहिये। कितनी पद्धतियों में दीक्षा के समय कलश स्थापन की विधि भी बताई है, उसे सभी ब्राह्मण जानते हैं, न जाने उन्हें सीख लेनी चाहिये। अगस्त्यसंहिता में दीक्षा लेने के पहले दिन कलश स्थापना महा पूजा-संकीर्तनोत्सव विप्र वैष्णव भोजन आदि करके रात्रि में जागरण करने का विधान है, दूसरे दिन इस प्रकार पुण्यात्मा बने शिष्य को हवनादि करके मन्त्र देने का विधान है (देखो अ० १७) उचित भी यही है, ऐसा करने से शिष्य को पुण्य की वृद्धि, पापक्षय, एवं भगवद्भागवत कृपा प्राप्त होती है। एवं दूसरों को आज के दिन भाग्य भाजन

बनने वाले श्रीवैष्णव को देखकर उपदेश एवं आनंद प्राप्त होता है। परन्तु आज तो जैसे तैसे कान फुँका लेना ही पर्याप्त समझा जाता है। कितने गुरु भी कहीं दूसरे का चेला न बन जाय यह सोचकर इस शास्त्रीय पद्धति की उपेक्षा कर देते हैं। जिसको वैष्णव होने में अनेकों विघ्न हों उन्हें लाचारी से चुरा छिपाकर दीक्षा लेनी पड़े इस अवसर पर "आर्तानां नियमो नास्ति" मानकर जैसा चाहें उचित कार्य कर सकते हैं परन्तु इसलिये सबको ऐसा न करना चाहिये।

होमं कृत्वा हुतिं दत्वा राममन्त्रैश्च वेदवित् ॥ ९ ॥
मुद्राञ्च शरचापस्य शुद्ध धातुमयी तदा ॥
वह्नौ तप्त्वाऽथ शिष्यस्य दद्याद्वै भुजोगुरुः ॥१०॥
चिन्हमेकं तु चापस्य वामे च दक्षिणे तथा ॥
शर चिन्हद्वयं कृत्वा रामनामयुतं वरम् ॥ १० ॥

श्रीराममन्त्र से होम करके, आहुति देकर वेदज्ञ वैष्णव धनुर्बाण की सप्तधातु निर्मित पवित्रमुद्रा अग्नि में तपावे, बाद में शिष्य के बायें हाथ की भुजा पर एक धनुष की छाप और दाहिने बाहुमूल पर श्रीरामनामांकित बाणकी दो छाप लगावे।

वेदिका पर अबीर या कुंकुमादि से षट्कोण बनाकर बीच में वह्निबीज 'रां' लिखकर पवित्र समिधा आम-पीपर अपामार्ग-आक शमी गूलर आदिकी लकड़ी रखकर अग्नि प्रज्वलित करे। उसमें सद्गुरु श्रीराममन्त्र से १०८ आहुति देकर जौ-तिल-घृत-शक्कर-मेवा आदि हवनीय पदार्थों से हवन करे।

Scanned by CamScanner

मूल मन्त्रेण जुहुयाच्छतमष्टोत्तरं घृतैः ।
वैष्णव्या चैव गायत्र्या तद्विष्णोरिति वै ऋचा ॥

—ईश्वर संहिता, २१, अ० २२८ श्लोक ।

स्मरण रहे कितने लोग वैष्णव मन्दिरों में भी अवैष्णव ब्राह्मणों से पूजा-प्रतिष्ठा-हवन-श्राद्धादि कराते हैं यह सर्वथा अनुचित है ।

महाभागवतैरेव पूज्यो देवालयादिषु ।

विष्णुतिलक संहिता, अ० १ श्लोक १६१ ।

आगे भी अवैष्णव ब्राह्मण को वैष्णव कभी अपना पुरोहित न बनावे इस विषय में प्रमाण आ चुके हैं, अस्तु—इसके बाद शिष्य के द्वारा भगवदायुधों की षोडषोपचार पूजा करावे । पश्चात् हाथ जोड़कर यह स्तोत्र पाठ स्वयं सद्गुरु शिष्य की ओर से करे या शिष्य से पाठ करावे—

प्रेरकं बाणवृन्दानां रामचाप नतोऽस्म्यहम् ।
चक्रानन्त पतिं तीक्ष्णं रामबाणमहं भजे ॥
रामब्रह्म राजपुत्र हस्तेऽजस्रं विराजितौ ।
सूर्यानन्त प्रभावन्तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥
असुराणां घातकौ च सुराणां भय नाशकौ ।
निहितेऽभ्यो मोक्षदौ च धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥
स्वचिन्ह बाहुमूलेभ्यः सीतारामांघ्रि भक्तिदौ ।
श्रीराममुष्टि शोभाढ्यौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥

Scanned by CamScanner

ध्यातानन्द करौ दिव्यौ योगिनां ध्यान दुर्लभौ ।
नित्यौ रामायुधाख्यौ तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥
ममशूलाच्छक्तिशूलाद्विष्णुचक्रात्परात्परौ ।
दिप्यन्तौ राममुष्टयाप्तौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥
असुरेभ्यो भीतकारथ्यां सुरेभ्यः शरण प्रदौ ।
भूमि भार हरावेतौ धनुर्बाणौ नमाम्यहम् ॥

—शिवपार्वतीसंवादे, अमर रामायणे, सर्ग १ श्लो० १४५ से

श्रीरामवामहस्तस्थ धनुर्धर्माभिपालक ।
कामादिनाभिभूतस्य राम मार्गं प्रदर्शय ॥
श्रीराम सव्य हस्तस्थ शराहित विनाशक ।
सूर्य शत समाशोर्चिः राममार्गं प्रदर्शय ॥

इस प्रकार प्रार्थना करके तब वैदिक धनुर्बाण मन्त्रों द्वारा शिष्य को तप्तमुद्रा प्रदान करे । धनुर्बाण मुद्रा शास्त्रविधि पूर्वक प्रतिष्ठा की हुई श्रीरामनामांकित एवं सप्तधातु निर्मित होनी चाहिये । ऐसा पञ्चसर्गीय महारामायण के द्वितीयाध्याय में वर्णन है ।

अग्नौ विशुद्ध हविषा विविधैः सुगन्धै-
र्होमं सुवेद विधिना शरशार्ङ्ग मन्त्रैः ।
अष्टोत्तरं शतमथो जुहुयात्सुभक्तो-
रामं स्मरेद्धृदि सदा जनकात्मजाढ्यम् ॥

तप्तं धनुःशरमथो खलु तत्र होमे--

प्रेम्णाङ्कितं सुमनसा च गुरुः प्रकुर्यात् ।
देशेषु चैव सकलेष्वपि सर्वकाले--
वर्णाश्रमाश्च सकलाङ्कित पुण्यपुञ्जाः ॥
वामे करे च धनुषा च शरेण सव्ये -
यश्चाङ्कितो हि मनुजो नरलोक धन्यः ।
तस्मै नमन्ति शिरसा द्रुहिणादि देवा--
स्तद्दर्शनेन मनुजा किलकल्मषघ्नाः ॥

—महारामायण, २ सर्ग २२ ।

'धन्वनेति' जपन्मन्त्रं शार्ङ्गपाणिं च संस्मरन् ।
बाहोर्वामस्य मूले तु धनुषा तापयेद् गुरुः ॥
तथा 'सुपर्ण' मित्यादि 'ऋजीत' इति चादरात् ।
जपन् दक्षिणमूले तु बाणाभ्यामङ्कयेत्पुनः ॥

— वाल्मीकि संहिता, ६ अ० ५६-५७ ।

धनुर्बाण की मुद्रा देते समय ये मन्त्र पढ़ने चाहिये—

'धन्वना गा धन्वनाजिंजयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥'

यह शुक्ल यजुर्वेद के २९ वें अध्याय का ३९ वां मंत्र है इसे पढ़कर बायें बाहु के मूल में धनुष की एक छाप लगावे ।

'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्मयंसन् ।'

ऋजीते परिवृङ्धि नोऽश्मा भवतु न स्तनू ।
सोमो अधिब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥

ये दोनों शुक्लयजुर्वेद के २९ वें अध्याय के ४८ और ४९ वें मंत्र हैं। इन्हें पढ़कर दो बाण दाहिने बाहुमूल में अंकित करे। कितने लोग बाहुमध्य में छाप लगाते हैं परन्तु शास्त्रीय विधि बाहुमूल में ही लगाने की है । इसके बाद धनुर्बाण को एक पात्र में पधरा कर पञ्चामृत से स्नान करावे, फिर चंदन तुलसी-पुष्पादि चढ़ाकर पूजा करे। फिर इस प्रकार प्रार्थना करे—

सुवर्ण रत्नाञ्चितमुज्वलं तं--
महा प्रभावैः परतः परं शरम् ।
सदैव श्रीराघव दक्षिणे करे--
प्रकाशमानं तमहं भजामि ॥ १ ॥
निरन्तरं राघव वामबाहौ--
विराजितं दिव्यतमं विचित्रम् ।
यदंश सम्भूतमशेष सर्ग--
भजामि भक्त्या च धनुर्धुरीणाम् ॥ २ ॥
विचित्र माणिक्य विभावितं वरं--
भजामि तुणीरमहं निरन्तरम् ।
रघूत्तमस्यैक कटि प्रदेशे--
समुल्लसन्तं शरसंघ संयुतम् ॥ ३ ॥

निराकृताशेष सुदाम सम्भवं--
स्वकाशतश्चन्द्रमरीचि निर्जितम् ।
विपक्ष पक्ष क्षपिणं क्षितीश्वरं--
भजामि रामायुध खड्गमुत्तमम् ॥ ४ ॥
प्रपन्नतापार्ति हरं प्रसन्नं--
प्रभासमानं वपुषा परेश्वरम् ।
सदैव श्रीराघव सन्निधानं--
भजामि श्रीपावनमायुधालयम् ॥ ५ ॥
समस्त दुःखौघ विनाश हेतुं--
सुपञ्चकं चायुध संस्तवं परम् ।
पठेद्य इच्छेदभयं सुखास्पदं
तथैव रामस्य सुख प्रसादजम् ॥ ६ ॥

इति श्रीयुगलानन्यशरण स्वामि कृतं श्रीरामायुध-पञ्चकस्तवम्

प्रत्यूह व्यूह भङ्गं विदधदुरुबलः शक्तिमान्सर्वकारी--
भूरि श्रेयः प्रतापो मुनिवर निकरैः स्तूयमानो विमानः ।
रक्षो दैत्यादिनाशी दलितखलनिधिर्लोकजिल्लोकमान्यो--
धन्यो नो मङ्गलौघं सपदि स कुरुताद्रामशस्त्रास्त्र सङ्घः ॥
— श्रीवैष्णव मताब्ज भास्कर २।

यह प्रार्थना करने के बाद शिष्य को समझा देवे कि-श्रीरामायुध सर्वश्रेष्ठ हैं, "आयुधानामहं धनुः" भगवान् का श्रीमुख वचन है इसलिए अब इन्हें धारण कर तुम निष्पाप

अतएव निर्भय पद को पा चुके, अब अन्य छाप लेने की आवश्यकता नहीं रही—

रामभुद्रास्ति यद्देहे तं पापं स्पृशते नहि ।
राममुद्रांकितं दृष्ट्वा नरं ते यमकिङ्कराः ।
पलायन्ते दश दिशः सिंहं दृष्ट्वा मृगा यथा ॥

—आनन्द रामायण, मनोहर कांड ७ सर्ग

चक्राङ्कित जनानां तु चापमुद्रा अपेक्षिता ।
चाप बाणाङ्कितानां तु चक्र चिन्हं विवर्जितम् ॥

—सनत्कुमार संहिता, ८ अ० १४ ।

चक्राच्छतगुणं प्रोक्तं फलं बाणादि धारणे ।

—अगस्त्य संहिता, ३४ अ० ५ ।

चक्रात्फलं शतगुणं धनुषः शरस्य
यश्चाङ्कितोऽपि स च रामजनाग्र गण्यः ।

—महारामायण २ सर्ग १८ ।

इत्यादि सैकड़ों प्रमाण शास्त्रों में उपलब्ध हैं, तप्तमुद्रा अपने ही निजगुरुदेव से अथवा उनकी आज्ञा से किसी श्री-वैष्णव महाभागवत अथवा द्वारा गादी के आचार्य चरणों से लेनी चाहिये । दुखी-सुकुमार-अतिबृद्ध-बाल-आतुर को शीतल छाप देवे— शीतलं नाऽथ तप्तेन चाङ्कितो रामकिङ्करः ।
इसके बाद शिष्य को ऊर्ध्वपुण्ड्र विधि पूर्वक धारण करावे ।

❋ ऊर्ध्वपुण्ड्र-धारण विधि ❋

पञ्चसंस्कारों में द्वितीय संस्कार ऊर्ध्वपुण्ड्र है, तापमुद्रा के बाद तिलक प्रदान किया जाता है, श्रीसम्प्रदायाचार्य प्रवर भगवान् श्रीरामानन्दाचार्य मुनीन्द्र ने संस्कार क्रम इस प्रकार बताया है –

तप्तेन[1] मूले भुजयोः समङ्कनं—
शरेण चापेन तथोर्ध्व[2] पुण्ड्रकम् ।
श्रुति[3] श्रुतं नाम[4] च मन्त्र मालिके[5]—
भवन्ति नित्यं परमार्थ हेतवः ॥

—श्रीवैष्णवमताब्ज भास्कर, ६१ ।

सनत्कुमार संहिता में भी—

ललाटे तिलकं दधादूर्ध्वञ्च स्वच्छ मृण्मयम् ।
सिंहासनोपरि श्रेष्ठं द्विरेखाञ्चरणा कृतिम् ।
स्थापयेज्जानकीरूपां तन्मध्ये श्रीं हरिद्रजाम् ॥१२॥

तप्तमुद्रा के पश्चात् आचार्य शिष्य को शुद्ध मृत्तिका का ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रदान करे, पहले सिंहासन बनाकर उस पर दो रेखा चरणाकृत्ति की बनावे, बीच में हरदी से बनी श्री को श्रीजानकीजी की कृपामूर्ति मानकर पधरावे । विशेष विधि इस प्रकार है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं सदाकार्यं विष्णुभक्ति परायणैः ।
पातित्यमन्यथा प्राप्य रौरवं नरकं व्रजेत् ॥१८॥

रैवतकाच्चित्रकूटाद्यादवाद्रेश्च वैष्णवाः ।
मृत्तिका हरणं कुर्युरूर्ध्वपुण्ड्राय सर्वदा ॥२२॥
गङ्गायाः सूर्य कन्यायाः सरय्वा वा मृदा सदा ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं शुभं कुर्यु वैष्णवा धर्म रक्षकाः ।२३॥
पूर्वं सिहासनं कुर्युस्ततः पार्श्वद्वयं पुनः ।
ततः पश्चाच्च तन्मध्ये लिखेयुः सुन्दरीं श्रियम् ।।२४॥
रजन्या श्रियमालिख्य मृदा वापि च शुक्लया ।
वैष्णवो मुक्तिमाप्नोति सर्वकल्मष वर्जितः ।२५॥

— वाल्मीकि संहिता अ० ४ श्लोक यथाक्रम ।

रैवतक (द्वारका) चित्रकूट-यादवाद्रि-गङ्गा-यमुना सरयू आदि प्रभु के पवित्र धामों की मृत्तिका से ऊर्ध्वपुण्ड्र करे। विष्णुभक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र सदा न करे तो पतित होकर नरक जाता है। धर्मरक्षक भक्तों को सदा श्री सहित सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र करना चाहिये। ऊर्ध्वपुण्ड्र का शास्त्रों में बड़ा महत्व है, उन वचनों को संग्रह ग्रन्थों में देखकर श्रद्धा बढ़ानी चाहिये, यहां दो चार दिये जाते हैं—

'हरेः पादाकृतिमात्मनो हिताय मध्येछिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं यो धारयति स परस्य प्रियो भवति, सपुण्यभाग्भवति, स मुक्तिभाग् भवति'

—इति ७० पृष्ठे स्मृतरत्नाकरे अथर्वणीय श्रुतिः,

पर्वताग्रे नदीतीरे ममक्षेत्रे विशेषतः ।
सिन्धुतीरेऽथ वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते ॥
मृद एतास्तु संग्राह्या वर्जयेदन्य मृत्तिकाः ।
श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं तथा ॥
श्रीकरं पीतमित्याहुः श्वेतं वैष्णवमुच्यते ।
अंगुष्टः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुस्करी भवेत् ॥
अनामिकान्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी ।
एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत् ॥
पूजाकाले जपे होमे सायं प्रातः समाहितः ।
नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम् ॥

—स्मृति चन्द्रिकायां, ब्रह्माण्डे ब्रह्माणं प्रतिभगवद्वचनं।

पर्वत, नदी सिन्धुतट, वल्मीक, तुलसीमूल, आदि स्थान जो मेरे पवित्र क्षेत्रों में हों वहां से ऊर्ध्वपुण्ड्र के लिए मृत्तिका लेवे अन्य मृत्तिका का त्याग करे। श्याम शान्तिप्रद-लालवशीकरण-पीला लक्ष्मीप्रद एवं श्वेत वैष्णव तिलक है। अंगुठा पुष्टि देने वाला-मध्यमा आयुप्रदा-अनामिका अन्नप्रदा और तर्जनी मोक्षप्रद हैं इन्हें छोड़ कनिष्टिका से तिलक न करे और नख न छुआवे। पूजा, होम, जप, संध्यादि सत्कर्मों के समय विधिपूर्वक भगवन्नाम जपते हुए ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक करे।

चतुरांगुलमूर्ध्वाग्रं द्वयंगुलं विस्तृतं तथा ।
द्विजः पुण्ड्रमृजुं सौम्यं सान्तरालं च धारयेत् ॥

—इति स्मृति रत्नाकरे, मरीचिः ७१ पृष्ठे ।

चार अंगुल से ज्यादा लम्बा चौड़ा और दो अंगुल बीच में विस्तार वाला ऐसा सौम्य एवं सुन्दर तिलक द्विज करे।

❋ ऊर्ध्वपुण्ड्र में विचारणीय बातें ❋

नाचरेद्धाम हस्तेन न नखैरपि धारयेत् ।
आत्मनैवात्मनोऽङ्गेषु नेतरेण कदाचन ॥

—तत्रैव ब्रह्मरात्रवचनम् ।

निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः।
सहि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियंचैव व्यपोहति ॥

—तत्रैव, ब्रह्माण्ड वाक्यम् ।

उर्ध्वपुण्ड्रं मृदा धार्यं यतीनां च विशेषतः ।
भस्म चन्दन गन्धादीन् वर्जयेद्यावदायुषम् ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु नान्यद्रव्याणि धारयेत् ॥

—तत्रैव वृद्धमनुः ।

नासिकामूलमारभ्य आकेशान्तं प्रकल्पयेत् ।
नासिका तृतीयोभागः नासिकामूलमिष्यते ॥
त्रिपुंड्रं ब्राह्मणो विद्वान् लीलयाऽपि न धारयेत् ।
धारयेत्प्रयतः सम्यगूर्ध्वपुंड्रं तु नित्यशः ॥

—तत्रैव, अग्निवेश्यगृह्यवचनम् ।

ऊर्ध्वपुंड्रस्य मध्ये तु श्रीचूर्णं परिधारयेत् ।
श्रीकरं विजयं पुण्यं सर्वदोष प्रणाशनम् ॥

—अत्रिस्मृतिः ।

Scanned by CamScanner

श्रियमेकं तु यः कुर्याद्विरेखा तिलकं विना।
तस्यलक्ष्मीर्भवेद्दुष्टा धर्मादिश्च विनश्यति॥

तिलक करने वाले इतनी बातें याद रखें—

१—बायें हाथ से तिलक न करे।

२—नख लगाकर तिलक न करे।

३—तिलक नित्यप्रति स्वयं ही करें।

४—दूसरे के हाथ से तिलक सामर्थ्य रहते हुए कभी न करावें।

५—ऊर्ध्वपुण्ड्र लिपा-पोता दंडाकार वीच में खाली जगह छोड़े विना कभी न करें (जैसा कितने ब्राह्मण करते हैं) ऐसा करने वाला श्री सहित प्रभु से विमुख होता है।

६—तिलक श्वेत मृत्तिका (चित्रकूटी चन्दन) से ही करें अन्य भस्म-केशर-श्रीखण्डादि का परित्याग करदें।

७—ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य में अक्षतादि अन्य द्रव्य न धारण करें।

८—नासिकामूल दोनों भौंह के पास सिंहासन करके तब तिलक करें। विना सिंहासन के तिलक न करें।

९—त्रिपुण्ड्र कभी धारण न करें, हँसी खेल में भी प्रयत्नतः ऊर्ध्वपुण्ड्र ही धारण करें।

१०—ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य में सर्वदोष नाशक-पुण्यप्रद-श्रीकर श्रीचूर्ण सदा धारण करें। केवल 'श्री' मात्र कभी न करें।

ऊर्ध्वपुण्ड्र स्त्री शूद्रादि सब करें

कितने लोग कहते हैं ऊर्ध्वपुण्ड्र स्त्रियों को नहीं करना चाहिए, उनको सिन्दूर ही पर्याप्त है, शूद्रों को भी नहीं करना चाहिए, उनका तो त्रिपुण्ड्र है ? इसका उत्तर यह है—

ऊर्ध्वपुंड्रं सदा कुर्याद् ब्राह्मणी ब्रह्मवादिनीः।

—पाराशर ब्राह्मणीय ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषद् मं० ६।

दीक्षिताश्च चतुर्वर्णाः स्त्रियश्च श्वपचस्तथा।
धारयन्त्यूर्ध्वपुंड्रं ये देवानामपि वन्दिताः॥

—पञ्चरात्र

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा म्लेच्छा वाऽन्त्यज जातयः।
ऊर्ध्वपुंड्र धराः सर्वे नमस्या देवता इव॥

—बृहद्ब्रह्म संहिता, १ पाद अ० १३ श्लोक ५७।

ऊर्ध्वपुंड्रमूर्ध्वरेखं ललाटे यस्य दृश्यते।
चांडालोऽपि स शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः॥

—पाद्मे-पातालखण्डे अ० ७६ श्लोक २२।

* एकपुंड्रं तु नारीणां शूद्राणां च विधीयते।

—पद्मोत्तरखण्डे अ० २२५ श्लोक ५३।

इत्यादि सैकड़ों प्रमाण दिए जा सकते हैं, अधिकारी-

* यही स्कन्दपुराण वैष्णवखंड-मार्गशीर्षमाहात्म्य के अध्याय २ का २० वां श्लोक भी है।

प्रकरण में भगवद्भक्ति सम्पन्न जीवमात्र को पञ्चसंस्कार सम्पन्न दीक्षा देने का विधान आ चुका है। अभक्त दीक्षाहीन अवस्था में स्त्री शूद्रों को अवश्य इसका अनधिकार है, भक्त स्त्री-शूद्रादिक को वैष्णवोचित सभी धर्मों के पालन करने का पूर्ण अधिकार है, यही साम्प्रदायिक सरणि है और ऐसी ही शास्त्रीय मर्यादा है।

श्राद्धादिक कर्मों के समय ऊर्ध्वपुण्ड्र

कितने लोग स्मार्त संग्रह ग्रन्थों के दो चार वचन लेकर श्राद्धादि काल में ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक, कंठी, माला धारण आदि का निषेध कर देते हैं, और भोलेभाले अज्ञानी लोग मान भी लेते हैं परन्तु ऐसा उचित नहीं है—

श्राद्धो होमस्तथा दानं स्वाध्यायः पितृ तर्पणम्।
भस्मीभवति तत्सर्वमूर्ध्वपुंड्रं विना कृतम्॥
ऊर्ध्वपुंड्र विहीनं तु यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजम्।
अश्नन्ति पितरस्तस्य विण्मूत्र नात्र संशयः॥

—वृद्ध हारीतस्मृति, अ० २ श्लोक ६०।

ऊर्ध्वपुण्ड्र विहीनस्तु सन्ध्या-कर्मादिकं चरेत्।
तत्सर्वं राक्षसैर्नीतं नरकं चाधि गच्छति॥

—पाद्मोत्तर खंड २५३ अ० १३ श्लोक।

अशौचं नैव विद्येत सूतके मृतकेऽपि च।

—स्कन्द-वैष्णव खंड-मार्ग माहात्म्य अ० १०

Scanned by CamScanner

न त्यजेन्मम कर्माणि सूतके मृतकेऽपि वा।

इत्यादि सैकड़ों प्रमाण दिये जा सकते हैं। ऊर्ध्व पुण्ड्र सदाकाल सभी वैष्णवमात्र को धारण करना कराना चाहिए। फिर चाहें वे स्त्री-पुरुष-ब्राह्मण-चाण्डाल-ब्रह्मचारी या सन्यासी आदि किसी भी संज्ञा का क्यों न हो।

ऊर्ध्वतोर्ध्वपुंड्रश्च त्रिदण्डोर्ध्वोर्ध्व योगवान्।
ऊर्ध्वगतिमवाप्नोति यतिरूर्ध्व चतुष्कवान्॥

यह वासुदेवोपनिषद् का ६ वां मन्त्र है। ऐसा ही ऊर्ध्व-पुण्ड्रोपनिषद् में भी कहा है। जो तिलक ऊँचे ले जाय वह ऊर्ध्वपुण्ड्र है. अतः यही सर्वश्रेष्ठ है। विशेष वैष्णवों के संग्रह ग्रन्थों में देखो—

ऊर्ध्व पुण्ड्र करने के समय पवित्र जल से आचमन कर बायें हाथ में चन्दन उतार कर उसमें 'रां' बीज मंत्र लिखे, बाद में बारह वार श्रीराममन्त्र से अभिमन्त्रित कर तब तिलक करे। पुनः श्री (कुंकुम) बायें हाथ में घोरकर उसमें 'श्रीं' बीजमन्त्र लिखे तब १२ वार श्रीसीतामन्त्र से अभिमन्त्रित करे। तब श्री लगावे। जो केवल श्वेत चन्दन से ही श्री या बिन्दु करते हैं उन्हें प्रथम ही 'श्रीं-रां' ऐसा लिखकर युगलमन्त्र से अभिमन्त्रित कर तिलक लगाना चाहिये। और जो पढ़े लिखे न हों उन्हें यों ही दाहिना हाथ उतारे हुए चन्दन वाले बायें हाथ पर ढांप कर युगलमन्त्र अथवा श्रीसीतारामनाम से अभि-

Scanned by CamScanner

मन्त्रित कर तिलक करना चाहिये । विना तिलक के कोई शुभ क्रिया कभी न करनी चाहिये ।

ॐ विष्णुचन्दन पापघ्न विष्णुलोक समुद्भव ।
चक्राङ्कितनमस्तुभ्यं धारणान्मुक्तिदोभव ॥

तिलक देते समय यह मंत्र पढ़े और शिष्य से पढ़ावे, यह वासुदेवोपनिषद का २ मंत्र है ।

❋ नाम करण विधि ❋

तथोर्ध्वपुण्डाणि मृदा विधायतद्-
गात्रेषु नामा विदधीत वैष्णवम् ॥

—श्रीवैष्णवमताब्ज भास्करः ६३ ।

शिष्यन्तु राम सम्बन्ध नाम्ना वै प्रवदेत् पुनः ॥

—सनत्कुमार संहिता १४ ।

संस्कारों के क्रम में शास्त्रीय वचनों में कई भेद हैं। परन्तु हमें तो आचार्योपदिष्ट क्रम ही मान्य होना चाहिये, उन्होंने तिलक के बाद नाम देने की आज्ञा प्रदान की है । नाम भगवत् संबंधी एवं दास्यभावना का द्योतक होना चाहिए। क्योंकि—

भगवच्छेषमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते ।
त एव हि महापापी चाण्डालाः स्युर्न संशयः ॥

—वृद्ध हारीतस्मृति ६ अ० ८२ श्लोक ।

जो अपने को प्रभु का दास एवं शेषभूत नहीं मानते हैं वे पापी महाचाण्डाल होते हैं इसमें कोई संशय नहीं है।

"यस्यायं विश्व आर्यो दासः" (यजुर्वेद ३३। ८२)

योजयेन्नाम दासान्तं भगवन्नाम पूर्वकम् ।
तस्मात्पापानि नश्यन्ति पुण्यभाजो भवेन्नरः ॥

—पाराशर धर्मशास्त्र उत्तर खंड २ अ० ४६।

भगवन्नाम के पीछे दास्यभाव द्योतक शब्द की योजना कर नाम रखे तो सभी पाप नष्ट होकर पुण्यभाजन पुरुष बनता है।

※ नाम देने में विचारणीय बातें ※

'यशस्य नक्षत्राश्रयं नामधेयं देवताश्रयम्'

कृष्ण यजुर्वेद मैत्रायणीयशाखा, मानवगृह्यसूत्रे १+१८।

यस्य वै वैष्णवं नाम नास्ति माङ्गल्यकारकम् ।
अनामकः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥
शक्त्यावेशावताराणां वर्जयेन्नाम वैष्णवः ।
नामदद्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥
गुणयोगेन चान्यानि विष्णुनामानि लौकिके ।
विशिष्टं वैष्णवं नाम सर्वकर्मसु बोधितम् ॥
परम्परागुरोर्नाम दद्याच्छिष्यं सुतं तु वा ।
तस्माद्भगवतो नाम सर्वेषां श्रुति चोदितम् ॥

—वृद्ध हारीतस्मृति, अ० २।

Scanned by CamScanner

जीवन्त एव चांडाला भविष्यन्ति न संशयः ।
नास्ति चैद्वैष्णवं माम येषां वै द्विज सत्तम् ॥
—तत्रैव १ अ० २० श्लोक ।

द्वेष्टारो विष्णुभक्तानां ये चावैष्णव संश्रयाः ।
पाखंडिभिश्च संयुक्तास्ते वै पाखंडिनस्स्मृताः ॥
—पाद्मोत्तर खंडे अ० २३५ श्लोक ४ ।

१--नाम जन्मनक्षत्र और ईष्टदेव के आश्रित होना चाहिये।

२—शक्ति और आवेशावतारों का सम्बन्धी नाम न रखें। अर्थात्-परशुरामदास, गणेशदास, कालीदास, महादेवदास, हीरादास, वाराहदास, कच्छपदास, आदि न रहे ।

३—गुणयोग वाले नाम दे, अर्थात् प्रभु के जगत्प्रसिद्ध गुणों के अनुकुल नाम रखे यथा-दीनबन्धुदास, रामपावनदास, रामसुन्दरदास, रामकृष्णशरण आदि ।

४—परम्परा के आचार्यों के आश्रित नाम रखे यथा—श्रीव्यासदासजी, शुकदेवदास, वशिष्ठदास, हनुमान्दास रामानन्दशरण, राघवानन्दशरण आदि ।

५—विशेषत: साक्षात्प्रभु सम्बन्धी ही नाम रखे यथा—सीतारामदास, जानकीवल्लभदास, अवधकुमारदासादि।

अद्य प्रभृति श्रीराम ! तव दासोऽस्मि सर्वथा ।
दासान्तनाम गृह्णामि प्रसीद करुणालय ॥

शिष्य से यह मन्त्र पढ़ाकर नाम संस्कार देवे ।

Scanned by CamScanner

कितने महात्मा चुल्हाईदास, लोटनदास, रीझनदास, भूलनदास, बुधईदास, आदि नाम धर देते हैं यह उचित नहीं है, नाम प्रभु सम्बन्धी सुन्दर होना चाहिये। दास्यान्त भगवन्नाम धरने से प्रभु का नाम वार-वार लेने का सुअवसर हाथ लगता है और अपनी दास्यता का ज्ञान सदैव बना रहता है जिस दास्यता के लिये सब ऋषी-मुनी और देवगण तरसते हैं। इसलिए हमें तो यही कहना उचित है कि—

अहं हरे तव पादैक मूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः।

—भागवत ६ स्कंध अ० ११ श्लोक २४।

दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्ट कर्मणः।

—वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकांड ४२ सर्ग ३४ श्लोक।

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो—
नो वा वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्द पूर्णामृत्ताब्धेः—
सीताभर्तुः पदकमलयोर्दास दासानुदासः॥

❋ तुलसी माला धारण विधि ❋

शिष्य को ऊपर वाला श्लोक पाठ कराकर दृढ़भाव करा दें कि मैं आज से प्रभुका दास हूं और मेरा श्रीगुरुप्रदत्त यही शुभ नाम है, गृहस्थ को शरण और प्रसादान्त नाम देवे। स्त्रियों को दासी, सहचरी अथवा ऐसा ही कोई शब्द लगाकर प्रभु सम्बन्धी नाम रखे। बाद में—

Scanned by CamScanner

विभूष्य तं तौलस मालयागुरु —
मन्त्रोपदेशं विधितो ददीत च ।
—श्रीवैष्णवमताब्ज भास्करः ६३ ।

तुलसी मालिका सूक्ष्मा कंठलग्ना द्विधाकृती ।
दद्यात्तां क्षणमात्रोऽपि शिष्योनैव त्यजेत्पुनः ॥
—सनत्कुमार संहिता, ६ अ० १५ श्लोक ।

वैष्णवैः सततं धार्या श्रीतुलसी द्वियष्टिका ।
तां त्यजन् पुरुषो मूढो भ्रष्टसंस्कार एव हि ॥
—वाल्मीकि संहिता, ६ अ० ६८ श्लोक ।

तुलसी की माला (कंठी) महीनदाने की दोहरी कण्ठ में लगी हुई धारण करावे, गुरु महाराज द्वारा तुलसी की कंठी प्राप्त करने के बाद शिष्य क्षणमात्र भी परित्याग न करे, त्याग करने से मूढ़ पुरुष संस्कार भ्रष्ट हो जाता है, इसलिये कंठी वैष्णवों को सदा धारण करनी चाहिए ।

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा ।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलौकैक पाविनी ॥
—अगस्त्य संहिता ६ अ० ४ श्लोक ।

क्षालितां पञ्चगव्येन मूलमन्त्रेणमन्त्रिताम् ।
गायत्र्याचाष्टकृत्वावै मंत्रितां धूपितां च ताम् ॥
विधिवत्परयाभक्त्या सद्योजातेन पूजयेत् ।
सन्निवेद्यं व हरये तुलसीकाष्ठ सम्भवाम् ॥

मालां पश्चात्स्वयं धत्ते स वै भागवतोत्तमः ।
हरये नार्पयेद्यस्तु तुलसीकाष्ठ सम्भवाम् ।
मालां धत्ते स्वयंमूढः स याति नरकं ध्रुवम् ॥

— हरिभक्तिविलासे गरुणपुराण बचनम् ।

त्रैलोक्यनाथ सर्व व्यापक भगवान् श्रीरामजी को जैसे श्रीजनक राजकुमारी प्राणप्रिय हैं वैसीही प्रिय सर्वलोक पाविनी तुलसी भी है । पञ्चगब्य से स्नान कराकर माला को मूल-मन्त्र से (रां रामायनमः) से अभिमन्त्रित करे, पुनः गायत्री से आठ वार धूप देते हुए अभिमन्त्रित करे । फिर प्रभु को अर्पण करदे, उस माला को वैष्णव धारण करे ऐसा न कर प्रभु को विना अर्पण किये ही स्वयं माला धारण कर लेता है तो नरक में जाता है । मालाधारी जगत्पावन हो जाता है—

ये कंठलग्न तुलसी नलिनाक्षमाला-
ये बांहुमूल परिचिन्हित शंख चक्राः ।
ये वा ललाट फलके लसदूर्ध्वपुंड्रा-
स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥

—पद्मोत्तर खंडे २२४ अ० ७० श्लोक ।

❋ कण्ठी सर्वदा धारण करे ❋

तुलसीकाष्ठ सम्भूतां यो मालां वहते नरः ।
अप्यशौचेऽप्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥

Scanned by CamScanner

प्रायश्चितं न तस्यास्ति नाऽशौचं तस्य विग्रहे ।
तुलसीकाष्ठ मालाभिभूषितः पुण्यमाचरेत् ॥
पितॄणां देवतानां च पुण्यं कोटि गुणं भवेत् ॥
–स्कान्दे वैष्णव खंडे मार्गमाहात्म्ये अ० ४ श्लोक २-११

गुरुदत्ता तु या माला कंठलग्ना सुसंस्कृता ।
तुलसीकाष्ठ सम्भूता न त्याज्या सा कदाचन ॥
–सनत्कुमार संहिता, ४ अ० ।

यज्ञोपवीत वद्धार्था कंठे तुलसीमालिका ।
नाऽशौचं धारणे तस्या यतः सा ब्रह्मरूपिणी ॥
–स्कान्दे ।

यज्ञसूत्रं विना विप्राः वेद हीना क्रिया यथा ।
सत्यहीनं यथावाक्यं मालाहीना च वैष्णवाः ॥

इत्यादि सैकड़ों प्रमाण है, विशेष संग्रह ग्रन्थों में अथवा 'तुलसीतत्त्वभाष्कर' पञ्चसंस्कार 'गतिबोध' आदि ग्रन्थों में देखो । क्षणमात्र भी तुलसी का त्याग न करे । तुलसी की कंठो धारण करते समय यह मन्त्र गुरु पढ़े :-

यथा त्वं वल्लभा विष्णोर्नित्या विष्णुजन प्रिया ।
तथैनं कुरु कल्याणि ! शिष्यं विष्णुजन प्रियम् ॥

शिष्य से यह मन्त्र अथवा इसका भाव पढ़ावे—

तुलसी काष्ठ सम्भूते ! माले विष्णुजनप्रिये ।

विभर्मि त्वामहं कंठे कुरु मां रामवल्लभम् ॥

इस प्रकार तप्त मुद्रा-ऊर्ध्वपुण्ड्र-नाम तथा माला इन चारों संस्कारों को देने के बाद श्रीराममन्त्र प्रदान करे—

तस्मात्तापादि संस्कारास्सर्वंमन्त्रेषु सत्तमाः।
अध्यापयेत्ततः पश्चादन्यथा नरकं व्रजेत् ॥
अकृत्वावैभवं मन्त्रं मन्त्रमध्यापयेद्गुरुः।
रौरवं नरकं याति यावदाभूत संप्लवम् ॥

इसलिए तापादि चारों संस्कार देने के बाद ही आचार्य मन्त्रोपदेश करे। अन्यथा गुरु को रौरव नरक में जाना पड़ता है जो लोग विना कंठी तिलक के ही मंत्रोपदेश कर देते हैं उन्हें इस शास्त्राज्ञा पर विचार करना चाहिये। शिष्य संस्कारों का सर्वदा दृढ़ता पूर्वक नाना विघ्नों के कारण पालन न कर सके तो भी मन्त्रदान के समय गुरु को अपनी मर्यादा बचा लेनी चाहिये।

❊ मन्त्र प्रदान विधिः ❊

राज्यं दद्याद्धनंदद्यात् प्राणान्दद्यात् कदापि वा।
न दद्याद्भक्तिहीनाय मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥

—सदाशिव संहिता,

श्रीरामतारकं मन्त्रं कर्णे च श्रावयेद्गुरुः।

—सनत्कुमार संहिता, ६ अ० १५।

राज्य दे दे, धन दे देवे कदाचित् प्रेम या भयवश प्राण

भी दे देवे, परन्तु अभक्त को श्रीरामषडक्षर मन्त्र कभी न दे। योग्य शिष्य को ही गुरु कान में श्रीराममन्त्र सुनावे । उसकी विधि इस प्रकार है—

तत्प्राङ् मुखोपविष्टस्यचोत्तराभिमुखो गुरुः ।
शनैः शनैः शुभेकर्णे त्रिवारं श्रावयेन्मनुः ॥

—नारदपञ्चरात्र।

उस विनयी पूर्वाभिमुख बैठे हुए शिष्य को उत्तराभिमुख बैठकर गुरुदेव दाहिने कान में धीरे-धीरे शुद्ध स्पष्ट शब्दों में तीनवार मन्त्र सुनावे । कहीं १०८ बार भी लिखा है यथा—

ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्तं दत्वा शतं जपेत् ॥
अष्टोत्तरं ततो मन्त्रं दद्यादुदक पूर्वकम् ॥
प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्याय मुनि पुङ्गव ॥
स्वतो ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद्गुरुः ।
आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मिति विशेषतः ॥
कृत कृत्यस्ततः शिष्यस्तस्मै सर्वं निवेदयेत् ।
यच्च यावच्च यद्भक्त्या गुरवे हृष्टचेतनः ॥

—अगस्त्य संहिता अ० १७ श्लोक ३६ से।

उपासकस्तु श्रद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत् ।
स्वचित्त वित्त कायैश्च भक्तिश्रद्ध समन्वितः ॥
यथा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नो वरदं मनुम् ।
स्वयमेव तथा चैवमिति कर्तव्यताक्रमः ॥

तत्रैव श्लोक २-३ ।

Scanned by CamScanner

तब शिष्य के मस्तक पर अपना दाहिना हाथ रखकर गुरुदेव प्रसन्नमुख से शिष्य को १०८ बार मन्त्र सुनावे । उस समय पासवर्ति लोग श्रीसीतारामनाम संकीर्तन आनन्द पूर्वक करते रहें । मन्त्र दान के समय गुरु अपने हृदय से ज्योतिर्मय दिव्य ब्रह्मविद्या निकलकर शिष्य में प्रवेश कर रही है ऐसी भावना करे और शिष्य ज्योतिर्मय दिव्य भगवन्मन्त्र अपने हृदय में प्रवेश कर रहा है ऐसी भावना कर अपने को परम-धन्य अतएव कृतार्थ समझे । शिष्य हर्षित होकर जो कुछ हो अपना सर्वस्व श्रीगुरुदेव को अर्पण करदे । शुद्धात्मा शिष्य-तन-मन-धन से जैसे बने गुरुदेव को प्रसन्न करें, जिससे प्रसन्न होकर शिष्य को स्वयं गुरु मन्त्र प्रदान करें । मन्त्रदान के समय शिष्य और अपने मस्तक पर वस्त्र भी ढांक लेते हैं ।

पूर्वं दद्याद्गुरुस्तस्मै मूलमन्त्रं षडक्षरम् ।
ततश्च चरमं दद्यादुपदेश क्रमात्सदा ॥

प्रथम श्रीरामतारकषडक्षर मन्त्रराज का उपदेश दे। तब द्वयमन्त्र का, पुनः चरममंत्र एवं शरणागति मन्त्र का उपदेश देवे। मन्त्रोपदेश दाहिने कान में ही करना चाहिये। कितने लोग स्त्रियों को बायें कान में उपदेश देते हैं वह ठीक नहीं है ।

ततो मन्त्रद्वयं तस्य दक्षकर्णे विनिर्दिशेत ।
मन्त्रार्थञ्च वदेत्तस्मै यथावदनुपूर्वशः ॥

—पद्मपुराण, पातालखंड अ० ८२ श्लोक १५ ।

मुमूर्षोः दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम् ।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स पूतो भविता शिव ! !

—रामोत्तर तापपिन्युपनिषद् २७।

इत्यादि दक्षिण कर्ण में मन्त्रदान का विधान ही मिलता है। स्त्रियों को बायें कान में देने का पृथक् विधान कहीं नहीं मिलता। मन्त्र के बाद मन्त्रार्थ और जीव ईश्वर का सम्बन्ध ज्ञान भी शिष्य को करा देना चाहिये। समयाभाव में एक वर्ष के भीतर सभी बातें सिखा देनी चाहिये, क्योंकि—

मन्त्रदाता न गुरुर्न च मन्त्रार्थवाचकः ।
मन्त्रमन्त्रार्थ यो दद्यात्सगुरुरित्यभिधीयते ॥

मन्त्र सुना देने वाला गुरु नहीं है और मन्त्रार्थ बताने वाला भी गुरु नहीं है, परन्तु मन्त्र-मन्त्रार्थ-ध्यान-उपासना-भगवत् संबंधादि सम्पूर्ण रहस्यों का उपदेश देने वाला ही गुरु है। गुरुदेव की आज्ञा से या उनके अकस्मात् परलोक जाने पर शिष्य अपने ही सम्प्रदाय के योग्य सन्त से जिनको अपने गुरुदेव भी श्रद्धा से मानते आये हों अथवा जिनको संत समाज श्रद्धा से मानता हो तथा अपनी भी श्रद्धा हो ऐसे योग्य सन्त से सम्प्रदाय का रहस्य सीखना चाहिए और उन्हें भी श्रीगुरुदेव के ही समान मानना पूजना चाहिये।

इसके बाद श्रीरामगायत्री और श्रीलक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-हनुमान् एवं गुरुमन्त्र का क्रमशः उपदेश करना चाहिये। तथा

Scanned by CamScanner

श्रीराममन्त्र जपके साथ आदि अन्त में इन मन्त्रों के जपकी आज्ञा देनी चाहिये और श्रीजी का मन्त्र भी श्रीराममन्त्र के साथ ही देना चाहिये क्योंकि श्रीसीताजीके मंत्र विना श्रीराम-मंत्र आधा ही है—

देव्यास्तु पूर्वमेवोक्तं सहरामेण तद्भवेत् ।
भरतस्यैवमेवं स्याच्छत्रुघ्नस्याप्ययं विधिः ॥
अङ्गत्वेनोदिताह्येते प्राधान्येनापि सत्तम ।
हनूमतोप्येवमेव कुर्यात्पूजामतन्द्रितः ॥
आदौ वाप्यन्ततो वापि पूजाया राघवस्य तु ॥

—अगस्त्यसंहिता, ३ अ० २७ श्लोक ।

लक्ष्मणस्य मनुर्जप्यो मुमुक्षुभिरतन्द्रितैः ।
तारकं ब्रह्मलोकेऽस्मिन्यथा सेव्यं मुमुक्षुभिः ॥
अजप्त्वा लक्ष्मणमनुं राममन्त्रान् जपन्ति ये ।
तज्जप्तस्य फलं नैव लभन्ते कुशला अपि ॥

—अगस्त्यसंहिता, ३० अ० ४१-४२ श्लोक ।

श्रीलक्ष्मणादिक मन्त्रों को विना जपे राममन्त्र जपने वाले पूर्ण विधि से जपें तो भी मन्त्र जपका फल नहीं पाते हैं। अतः ये मन्त्र अवश्य जपने चाहिये ।

इसके बाद गुरु परम्परा का उपदेश देवे । 'कृपया गुरु-देवस्य द्वितीयो जन्म कथ्यते' अतः दीक्षा लेने के बाद समस्त द्विज धर्म का अधिकारी जीव बन जाता है, उसको दूसरे जन्म में अपने नाम के साथ नादसृष्टि के पूर्वजों का भी पूर्ण परिचय

Scanned by CamScanner

अवश्य कर लेना चाहिये। श्रीअग्रस्वामि प्रणीत गुरुपरम्परा कण्ठस्थ कर लेनी चाहिए, कमसे कम—

सीतानाथ समारम्भां रामानन्दार्य मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम् ॥

यह श्लोक अवश्य याद करलेना चाहिए। श्रीराम-सीता हनूमान्--ब्रह्मा-वशिष्ठ-पराशर-शुक-बौधायन-श्रीरामानन्दाचार्य प्रभृति पूर्वाचार्य और अपने द्वाराचार्यों का सदा शुभनाम स्मरण करने से उनकी महान् कृपा के अधिकारी बन जाते हैं। जिन आचार्यों की अनुकम्पा से श्रीराममन्त्रराज रूपी महारत्न मिला है, उनका उपकार कभी नहीं भूलना चाहिये। श्रीराम मन्त्र लेकर अन्य मन्त्र की दीक्षा कभी न लेनी चाहिये।

राममन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा गृह्णन्त्यन्यन्तु ये पुनः।
नरकान्ननिवर्तन्ते यावच्चन्द्र दिवाकरौ ॥
राममन्त्र समादाय योऽन्य मन्त्रं समिच्छति।
गृहीता प्राप्नुयात्पापं दाता च नरके व्रजेत् ॥

—भुषुण्डि रामायणे, लोमशवचनम्।

लब्ध्वा षडक्षरं मन्त्रं रामस्य परमात्मनः।
मन्त्रान्तरान्प्रयत्नेन वर्जयेन्मन्त्र तत्त्ववित् ॥

—नारद पंचरात्रीय संकर्षण संहिता।

गृहीत्वा वैष्णवात्सम्यङ् मन्त्रराजं षडक्षरम्।
अन्यमन्त्रं जिघृक्षेच्चेद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥

—पुष्कर संहिता।

Scanned by CamScanner

राम मन्त्र वर पाय पुनि, आन मन्त्र जे लेहिं ।
कांच किरिच गहि ते अबुध, चिन्तामणि तजि देहिं ॥
आन मंत्र तजि जे गहत, राम मन्त्र शिरताज ।
सिंधु फेन तजि ते चढ़े, जनु रसरङ्ग जहाज ॥

कितने लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों को एक गुरु से मन्त्र न लेना चाहिए यह वात शास्त्र सम्मत नहीं है, शास्त्रों में तो—

स्त्रिया सहैव कर्तव्या संस्कारा पञ्च वै क्रमात् ।
मन्त्रे-ज्ञाने-धर्मकार्ये उपदेशे महात्मनाम् ।
दम्पत्योरेकगुरुता श्रेष्ठा नैव विदूषिता ॥

—शाण्डिल्य स्मृतिः ।

मन्त्र लेने में, कथा सुनने में, ज्ञान प्राप्त करने में, संतों के सत्सङ्ग में, एवं किसी भी धर्मकार्य के करने या सीखने में दम्पति की एकगुरुता श्रेष्ठ ही है, दूषित नहीं है, दाम्पत्यधर्म व्यवहारिक है, और यह मार्ग पारमार्थिक है इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिए। एक ही गुरु से समस्त परिवार शिष्य हो सकते हैं-होते हैं और होते आये हैं।

श्रीराम और श्रीराममन्त्र ही सर्वश्रेष्ठ हैं

ये तु सामान्य भावेन मन्यन्ते पुरुषोत्तमम् ।
ते वै पाखण्डिनोज्ञेया नरकार्हा नराधमाः ॥

— बृहन्नारदीयपुराण ।

येषां राम प्रियो नास्ति रामे न्यूनत्व दर्शिनाम् ।
द्रष्टव्यं न मुखं तेषां सङ्गतिस्तु कुतस्तराम् ॥

—सदाशिवसंहिता ।

यश्च रामं न पश्येद्धि यं च रामो न पश्यति ।
गर्हितः स तु लोकेभ्य स्वात्माप्येनं विगर्हति ॥

— वाल्मीकीय रामायण ।

नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः ।
अनन्ता भगवन्मन्त्रा नानेन तु समाकृताः ॥

— वृद्धहारीतस्मृति अ० ६ श्लोक २४७ ।

राममंत्र विहीनानां शुद्ध कर्मवतामपि ।
विफला हि क्रियासर्वा इति वेदेषु कथ्यते ॥

—वाल्मीकिसंहिता, अ० २ श्लोक १४ ।

शान्तः प्रसन्नो वरदोऽक्रोधनो भक्तवत्सलः ।
अनेन सदृशोमन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते ॥
षडक्षरोऽयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघ निवारणः ।
मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः ॥

—अगस्त्यसंहिता, १६ अ० १२ और ४ श्लोक ।

इत्यादि हजारों प्रमाण संग्रह ग्रन्थ और मूलग्रन्थों में संगृहीत हैं। ऐसा श्रेष्ठ मन्त्र कोई नहीं है, 'रुद्रस्तारकं ब्रह्मव्याचष्टे' इस श्रुति से काशी में मुक्ति देने के लिए यही मन्त्र भग-

वान् शंकर ने सिद्ध कर लिया है। यह विष्णु के हजारों नाम के बराबर अकेला ही है, प्रभुके अनेक मंत्रों में भी इसके समान त्रिभुवन में कोई नहीं है, यह शान्त प्रसन्न-वरदायक-दयालु भक्तवत्सल मन्त्र है। इसीलिये इसको मन्त्र राज-महामंत्र-मूल-मंत्र-बीजमंत्र-मंत्ररत्न आदि कहा जाता है जिसे श्रीरामजी और श्रीराममन्त्र में प्रेम न हुआ अथवा जो इससे बढ़कर या इसके समान अन्य किसी का प्रतिपादन करता हुआ इनमें न्यूनता समझता है वह मूर्ख पाखण्डी, निन्दित है, उसका मुँह देखना भी पाप है, ऐसों की संगत कभी न करे जो अपने इष्ट से प्रेम छुड़ाकर श्रद्धाभङ्ग करने वाले हों। संगत ऐसों की करे जो दिन-दिन अपनी उपासना में आगे बढ़ाकर जीवन का कल्याण करने वाले हो।

षट् सहस्रं सहस्रं वा त्रिशतं शतमेव च।
जपं कुर्यात्प्रयत्नेन नो चेत्प्राप्नोत्यधो गतिम् ॥

—अगस्त्यसंहिता अ० २५ श्लोक २४।

छः हजार एक हजार, तीन सौ अथवा एक माला भी श्रीराम मन्त्र सदा जपना चाहिए, अन्यथा अधोगति प्राप्त होती है। यह मन्त्र जप सूतक मृतक में भी त्याग नहीं करना चाहिये, प्रमाण आगे आ चुके हैं। मनुष्य जीवन पाकर दीक्षा लेकर मन्त्रजप नित्य ही करना चाहिए, उपेक्षा करने से अपना ही नाश होता है। इसके बाद शिष्य से हाथ जोड़ाकर ये मंत्र अथवा इनका भाव बुलावें—

ॐ यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह वै देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बल मिन्द्रियाणि च सर्वाणि, सर्वं ब्रह्मोपनिषदं, माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां, मा-मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु, तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु ॐ शान्तिः।

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेना होरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु, अवतुमामवतु वक्तारम् ॐशान्तिः।

ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वान् देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहोराण मे नो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥ श्रीरामचन्द्र रघुनाथजगच्छरण्य राजीवलोचन रघूत्तम रावणारे। सीतापते रघुपते रघुवीर धीर त्रायस्व राघव हरे शरणागतं माम्॥ नमोस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै। नमोस्तु रुद्रेन्द्र यमानिलेभ्यो नमोस्तुचन्द्राग्निमरुद्गणेभ्यः॥

Scanned by CamScanner

तवास्मि जानकीकान्त कर्मणा मनसा गिरा।
रामकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम॥
मत्समोनास्ति पापात्मा त्वत्समो नास्ति पापहा।
इति सञ्चिन्त्य देवेश रक्ष मां शरणागतम्॥
अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम्॥
देहि मे कृपया राम त्वयिभक्तिमचञ्चलाम्॥

अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मिभूयः।
मनःस्मरेताशुपते गुणाँस्त्वा गृणीत वाक्कर्म करोतुकायः॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययात्मात्मज दारगेहेष्वासक्त चित्तस्य न नाथ भूयात्।

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्नापसर्पतु॥

अथवा भाषा के ये मन्त्र पढ़ें —

श्रवण सुयश सुनि आय हौं, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि-त्राहि आरति हरण, शरण सुखद रघुवीर॥
मो सम दीन न दीन हित, तुम समान रघुवीर।
अस विचारि रघुवंशमणि, हरहु विषम भवभीर॥
राका रजनी भक्ति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगण विमल, वसहु भक्त उर व्योम॥
वार-वार वर मांगहुँ, हर्षि देहु श्रीरङ्ग।
पद सरोज अनपायनी भक्ति सदा सतसङ्ग॥

Scanned by CamScanner

गिरा अर्थ जल वीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न।
वन्दौं सीताराम पद, जिनही परम प्रिय खिन्न ॥

बाद में शिष्य दक्षिणा समेत पुष्पाञ्जलि श्रीसीतारामजी को समर्पण कर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे। पश्चात् यथा-शक्ति भेंट-पूजा पुष्पमाला वस्त्रद्रव्यादि समर्पण कर श्रीगुरु-देव को साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे। पुनः उपस्थित सभी संत-भक्त-पूज्य वर्ग को सविनय दण्डवत् प्रणाम कर शुभाशिर्वाद प्राप्त करे। तब उपस्थित सन्तभक्त समाज में प्रभु प्रसाद वित-रण करे और यथा शक्ति वैष्णव विप्र-सन्त भक्तों समेत श्री-गुरु महाराज को भोजन करावे। चरणोदक उतार कर पान करे। अपना जन्म परमपावन एवं कृतार्थ धन्य समझे। भगवन्नाम संकीर्तन गीत-वाद्य आदि द्वारा महोत्सव मनावे। इस प्रकार प्रभु प्रिय पञ्चसंस्कार सम्पन्न दीक्षा पाकर जीव धन्य हो जाता है—

इमं सर्वोत्तमं धर्मं धारयन्ति च ये नराः।
देव पूज्यास्तु ते ज्ञेयाः श्रीरामस्याति वल्लभाः ॥
गच्छन्ति निश्चितं ते श्रीरामधाम परात्परम्।
प्रयांति पितरस्तेषां वैकुण्ठं हरि सन्निधौ ॥
ये नमंति बुधास्तान्वै ते कृतार्था न संशयः।
निन्दन्ति ये महामूढ़ा भवन्ति प्रेत पन्नगाः ॥
प्रायश्चितं तु तेषां वै न कदाचिद्भवेद्भुवि।

Scanned by CamScanner

कुम्भीपाके महाघोरे पतन्ति नरके मृताः ॥

सनत्कुमार संहिता, ६ अ० ।

इस प्रकार शास्त्रों में वैष्णवों की अमित महिमा गाई गई है, वैष्णव बन जाना अर्थात् विष्णु रूप भगवदीय हो जाना है। श्रद्धाभक्ति समेत शास्त्रीय विधानानुसार सभी जीव भगवच्छरण जाकर अपना आत्म कल्याण करें यही एक हमारी शुभ भावना अनन्तकृपार्णव प्रभु पूर्ण करें। हरिःॐतत्सत्

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु माकश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः—
भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभि—
र्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ हरिः ॐ शान्तिः ॥

जे निज भगत नाथ तव अहहीं ।
जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ तव चरण सनेहु ।
सोइ विवेक सोइ रहनि प्रभु, हमहि कृपा करि देहु ॥

श्रीसीता शरणं मम ।
श्रीरामः शरणं मम ॥

Scanned by CamScanner

❀ श्रीसम्प्रदायो-विजयतेतराम् ❀

❀ श्रीमते रामानन्दाचार्याय नमः ❀

✱ अथ तृतीयोऽध्यायः ✱

विरक्ति का कारण

यथा दद्यात्तु सर्वेषां दीक्षा श्रीवैष्णवी शुभा।
वर्णिता सा विधिह्यत्र तृतीयेशास्त्रसम्मता ॥ १ ॥
ज्ञान वैराग्य सम्पन्नास्सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्।
चतुर्थाश्रममाश्रित्य यथा तद्विधिरुच्यते ॥ २ ॥

— ग्रन्थ कर्तुः।

श्रीवैष्णवी दीक्षा लेकर प्रभु का भजन करते हुए भी गृहसंसार में सांसारिक कर्म करने ही पड़ते हैं जब जब संसार के कर्मों की उलझन में मनुष्य फँसता है तब तब अपने आत्म स्वरूप का भान भूलकर दुःखसागर में गोते लगाने लगता है, वैष्णवजन एक तरफ भगवद्‌भजन एवं सन्त समागम के सुर-दुर्लभ सुख का एवं दूसरी तरफ जगजंजाल के जहरीले दुःखका अनुभव करता है तब यही इच्छा होती है कि सब कुछ छोड़-कर दिनरात हरिका भजन करते यही अच्छा है, क्या रखा है विषयविलास के क्षणिक आनन्द में ? ब्रह्मानन्द की मस्ती में छककर प्रभु प्रेम का मधुपान कर पागल बन जावे तभी सच्चा सुख मिल सकता है, तब उसे ये वचन याद आते हैं—

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवं पर्युपासते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति ह्यध्रुवं नष्टमेव हि ॥

Scanned by CamScanner

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्य कृतः कृतेन। तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः-श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

— मुण्डकोषनिषद् १× २ + १२।

न कर्मणा न प्रजया धनेन—

त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥

वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः

सन्यास योगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।

ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले—

परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे ॥

—मुण्डकोपनिषद् ३-२-६।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्

देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ॥

श्वेताश्वतरोपनिषद् १—३।

जो नित्य सुखों का परित्याग कर अनित्य सुख की उपासना करता है, उसका नित्य सुख नष्ट हो जाता है और अनित्य तो नष्ट है ही।

कर्मों द्वारा संप्राप्त लौकिक सुखों की वार-वार परीक्षा करके विचारशील ब्राह्मण जान जाता है कि इनमें दुःख ही दुःख है तब संसार से एकाएक वैराग्य हो जाता है और परम सुख को पाने के लिये समिधादिक पूजा लेकर वेदज्ञ भगवत्प्रेमी सद्गुरु के शरण जाता है।

Scanned by CamScanner

अच्छे-अच्छे कर्म, सन्तान, धन या संसार की और कोई वस्तु सुख नहीं दे सकती, नित्य सुख तो एक त्याग के द्वारा ही मिलेगा।

सुनिश्चित अर्थ वाले वेदान्त के तत्त्व को जानकर जो सन्यास योग द्वारा शुद्ध सत्व की उपासना करते हैं वे ही अंत में ब्रह्मलोक में जाकर परम अमृतमय सुख भोगते हैं और सभी दुःखों से सदा के लिये छूट जाते हैं।

वे ही ध्यानयोगानुसार भगवद्भावना कर अपने गुणों से छिपी हुई आत्मा की दिव्य शक्ति का अनुभव करते हैं।

इन वचनों द्वारा 'वैराग्यमेवाभयम्' 'विष्णोः पदं निर्भयम्' मानकर गृहसंसार का बन्धन तोड़कर जीव प्रभु के शरण चला जाता है। घरमें रहकर, घरकी ममता त्याग कर, सभी संपत्ति प्रभु की मानकर 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' जल में कमल की भांति निर्लेप रह जाना बड़ा कठिन है ऐसा तो जनकादि विरल महा-पुरुष ही कर सकते हैं, इतर जीव तो गृह दुःखों का अनुभव कर त्यागी बन जायें तभी सुखी हो सकते हैं. इसलिये शास्त्रोंने चतुर्थाश्रमी होकर अन्तिम जीवन विताने का उपदेश किया है।

विरक्त (सन्यासी) होने के अधिकारी

विरक्त किस अवस्था में होना चाहिये? विरक्त कौन-कौन हो सकते हैं, इस विषय में कई मत हैं, हमें इस बखेड़े में न पड़कर सबके लिए जो सार्वभौम वचन आए हैं वे दिखा देते हैं।

Scanned by CamScanner

(१) एक मत यह है कि "प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः" प्रजातन्तु को मत तोड़ो, अर्थात् ब्रह्मचर्य के बाद गृह प्रवेश अवश्य करो।

(२ 'तस्मात्पुत्र मुखं दृष्ट्वा पश्चात्भवति तापसः" गृहस्थ पुत्रोत्पत्ति के बाद ही सन्यासी-त्यागी बने।

(३) "ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्" मनुष्य ऋषि-देव और पितरों का तीन ऋण लेकर जन्मता है, इन तीनों ऋणों को ब्रह्मचर्य-यज्ञ और प्रजा वृद्धि द्वारा छुड़ाकर तब मोक्ष में मन लगावे।

(४) ब्रह्मचारी गृहस्थो वा मृतदारो वने चरः।
ज्ञात्वा सम्यक् परं ब्रह्म त्यक्त्वा सङ्गान्परिव्रजेत् ॥

ब्रह्मचारी अथवा मृतदार गृहस्थ सभी संग त्यागकर ब्रह्म को भलीभांति जानकर परिव्राजक बने। अर्थात् स्त्री मर जाने पर अपुत्र गृहस्थ भी त्यागी बन सकता है और ब्रह्मचारी यदि निष्काम हो तो वह भी वैरागी बन सकता है।

(५) "ब्रह्मचर्याद् गृहाद्वा वनाद्वा यथा कामं परिव्रजेत्"

अर्थात् किसी भी आश्रम में हो पूर्ण निर्वेद प्राप्त होने पर वैराग्य ले सकता है।

सभी वचनों का तात्पर्य केवल हृदय की निर्लेपता पर है, ब्रह्मचारी को गृह सुख की आशा होगी, गृहस्थ को पुत्र धनादि की, वानप्रस्थ को मान प्रतिष्ठादि की या स्वर्गीय भोग वैभवकी तब उनका सन्यास वृथा ही है। इसीलिए कहा है—

Scanned by CamScanner

पुत्र-दार-गृह-क्षेत्र गो-हिरण्यादि बन्धनैः ।
विरक्तो मानुषैर्भोगैर्दिव्यैश्च स्मृति दर्शितैः ॥
वेदाभ्यासेन तपसा यज्ञेन वीतकल्मषः ।
जन्म जन्मान्तराभ्यासा द्विशुद्धात्मा जितेन्द्रियः । मेधातिथिः
जन्मकोटि शतारब्ध पुण्याप्तं दैवकारितम् ।
वैराग्यं जायते तस्य तृष्णापि ब्रह्मणि स्थिरा ॥ 'लिखितः'
सत्त्वोत्कटाः सुरास्तेऽपि विषयैस्तु वशीकृताः ।
किं पुनः क्षुद्रसत्त्वैस्तु मानवैरत्र का कथा ॥
तस्मात्पक्वकषायेण कर्तव्यं दण्ड धारणम् ।
त्रिदण्डलिङ्गमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ।
यो हि ब्रह्म न जानाति त्रिदण्डार्हो न स स्मृतः । 'दक्षः'
* तस्मादाशयशुद्धिं प्राग् बहुकालं परीक्ष्य च ।
मनो न चलते तस्मादिति ज्ञात्वाथ सन्यसेत ॥ लिखितः

बस यह अवस्था जिस समय प्राप्त हो जाय उसी समय विरक्त हो जा सकता है । 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत' । आतुरों के लिए विशेषाज्ञा इस प्रकार है—

व्याध्याविष्टो विरक्तो वा ब्रह्मवित्सन्यसेद्द्विजः ।
उत्पन्नेसंकटे घोरे चौर व्याघ्रादि गोचरे ।
भयभीतस्य सन्यासमङ्गिरा मुनिरब्रवीत् ।

---

* ऊपर के सभी प्रमाण स्वामी श्रीभगवदाचार्य जी महाराज द्वारा सम्पादित 'यति धर्मसमुच्चय' से लिए गए हैं ।

Scanned by CamScanner

सन्यस्तमिति यो ब्रूयात् कण्ठस्थ प्राणवानपि।
शतक्रतु सहस्रेण तुल्यं फलमवाप्नुयात् ॥ शातातपः।
यदैव मनसि वैराग्यं जातं सर्वेषु वस्तुषु।
तदेव सन्यसेद्विद्वानन्यथा पतितो भवेत् ॥

अस्तु वैराग्य होने पर जो चाहे जब चाहे परिव्राजक बन सकता है। अन्यथा आजकल अनधिकारी वैरागी वेष धारण कर लेते हैं और "जैसे विनु विराग सन्यासी" उपहासी के पात्र बनकर अपना-अपने धर्म का और वेष का अपमान कराते फिरते हैं। घर छोड़कर भी घर को भीख मांगकर भरते रहते हैं, कुटुम्ब पालन के लिए अथवा मठ मंदिर या संस्था का मालिक बनने के लिए आज लोग त्यागी बन जाते हैं, अन्त में वासना प्रगट होने पर निन्दनीय बनते हैं, देखिए शास्त्र क्या कहते हैं--

विद्वान्स्वदेशमुत्सृज्य सन्यासानन्तरं स्वतः।
कारागार विनिर्मुक्तचोरवद् दूरतो व्रजेत् ॥
परमात्मनि यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मनि।
सर्वेषणा विनिर्मुक्तः स भैक्ष्य भोक्तुमर्हति ॥

याद रहे--

कबीर टुकड़ा जगत का लम्बे लम्बे दांत।
भजन करे तो ऊबरै, नहिं तो काढे आंत ॥

अपना घर-देश त्याग कर जहल से भागे चोर की तरह

त्यागी अपने स्वजनों से दूर रहे। जो प्रभु का अनुरागी है, विषय से वैरागी है और आशा तृष्णा से मुक्त है वही भिक्षान्न का भोजन कर सकता है। अस्तु—हम बहुत कुछ कह गए अब सन्यास ग्रहण (विरक्त बनने) की संक्षिप्त विधि बतलाते हैं—

अथ सन्यास ग्रहण विधिः

त्याग, सन्यास, वैराग, सब एकार्थक एवं पर्याय है। वैष्णव सन्यासी, त्यागी अथवा वैरागी कहाते हैं। शैव सन्यासी, सन्यासी उदासी या गोसाईं कहाते हैं। यहां वैष्णव सन्यास की ही विधि बतलाई जाती है। वैष्णव तो "देवर्षि-भूतात्मनृणां च पितृणां न किङ्करो नाममृणी च राजन्" इस भागवत के वचनानुसार सभी ऋणों से मुक्त अतएव त्याग के सर्वदा ही परमाधिकारी हैं।

स्वीय प्रवृत्तेर्विनिवृत्तिरिष्टो न्यासः प्रपत्तिः शरणागतिर्वा।

—श्रीवैष्णवमताब्जभास्करः १००।

आचार्य सन्यास का स्वरूप बतलाते हैं कि अपनी निज इच्छा से सांसारिक या पारमार्थिक सभी प्रवृत्तियों का परित्याग कर प्रभु की शुभ प्रेरणानुकूल सन्त-शास्त्र और सद्गुरु की आज्ञा से अपनी समस्त क्रियायें करना ही न्यास-प्रपत्ति या भगवच्छरणागति मानी जाती है। त्यागी माने अपना कुछ न मानकर स्वयं अपने को भी प्रभुपर न्यौछावर कर देने वाला सर्वथा प्रभु पर निर्भर प्रेमी भक्त "न्यासो, आत्म निवेदनम्" इस प्रकार का हृदय होने पर त्याग ले लेना उचित है।

Scanned by CamScanner

पूर्णिमा आदि पवित्र शुभ दिन को दृढ़ सङ्कल्प कर पञ्चकेश कटावे, चौर छुरा से करावे, शिखामात्र रहने दे। उसके बाद स्नान करके देव, ऋषि, दिव्य, पितृ, मातृ, मानुष, भूत एवं अपना स्वयं मिलाकर आठों प्रकार के श्राद्ध करले। ब्राह्मण साधुओं को भोजन कराले, स्वस्तिवाचन एवं शान्ति पाठ करावे। अपना सर्वस्व इष्टदेव के मन्दिरं में ब्राह्मण को या धर्मकार्य में दान करदे। केवल दण्ड-कमंडल-जलपात्र खन्ती आसन-मेखला आडबंध) कौपीन एवं कंठी-माला-यज्ञोपवीत आदि विरक्तों की उपयोगी अत्यन्त प्रयोजनीय वस्तु रखे। देव मन्दिर-नदी-बगीचा या पुण्यतीर्थादि में जाकर आचार्य के चरण में साष्टांग पड़ जाय। यदि पहले से ही मनमें आचार्य चुन लिये हों या गृहस्थाश्रम में योग्य गुरु किये हों तो उपयुक्त कार्य उनकी आज्ञानुसार करे, नहीं तो किसी योग्य निकटवर्ति वैष्णव उपाचार्य से करावे। दानादिक सभी कार्य योग्य से ही करावे, कुपात्र से एवं अवैष्णव भक्तिहीन से कभी न करावे। बाद में पूर्ण त्याग वाले सद्गुरु के सम्मुख हाथ जोड़कर—

"ब्रह्मणे नमः। इन्द्राय नमः। सूर्याय नमः। आत्मने नमः परमात्मने नमः।" ये पांच बार जपे। इसके बाद कुश और जल लेकर वेदमन्त्र पुरुष सूक्तका पाठ करे। पीछे आचमन तीन बार करे—श्रीरामायनमः श्रीरामभद्रायनमः श्रीरामचन्द्राय-नमः। इत्याचमनम्। श्रीराघवेन्द्रायनमः इतिहस्त प्रक्षालनम्।

पुनः नाभिप्रदेश में हाथ रखकर—'आत्मने स्वाहा अन्तरात्मने स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा' ऐसा पढ़े। पुनः आचमन करे पञ्चगव्य या जल से। बाद में ये मन्त्र जपे—

ॐ भूः सावित्रिं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम्।

ॐ भुवः सावित्रिं प्रविशामि भर्गोदेवस्य धीमही॥

ॐ सुवः सावित्रिं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमही धियो यो नः प्रचोदयात्।' ऐसा बोलकर मैं आश्रमान्तर में प्रवेश करता हूं। मैं संसार छोड़कर भगवान का बनता हूँ ऐसी दृढ़ धारणा करे।

पश्चात्-ॐ दीक्षा तपसो तनूरसि तां त्वा शिवां शग्मां परिदधे, भद्रं वर्णं पुष्यन्। यह मन्त्र पढ़कर दीक्षा का वरण करें।

पुनः—'ॐ भूर्भुवः स्वः सन्यस्तं मया' 'भगवच्चरणे समर्पितम्' इस प्रकार तीन बार मनमें तीनवार जरा धीरे धीरे और तीनवार खूब जोर से बोले। फिर हाथ में जलाञ्जलि भर कर पूर्वाभिमुख होकर—'अथाभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' आज से सब मुझसे निर्भय हो जायें। ऐसा कहकर जल गिरा दे।

इसके बाद नवीन यज्ञोपवीत आचार्य पहिरावे, ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं' मन्त्र पढ़कर बाद में (इन्द्रस्य वज्रोऽसि) अथवा (त्रीणि पदानि विचक्रमे) मन्त्र पढ़कर त्रिदण्ड धारण करावे। तिलक माला आदि नूतन धारण करावे, कौपीन और

Scanned by CamScanner

कटि सूत्र देवे। (येन देवा ज्योतिषोर्ध्व उदायन्) इस मन्त्र से कमण्डलु देवे (युवासुवासा) इस मन्त्र से काषाय (गेरुआवस्त्र) देवे। पुनः मन्त्र मन्त्रार्थ-ध्यान आदि भगवद्रहस्य विस्तारपूर्वक समझावे। अखाड़ा द्वारा धाम क्षेत्र पञ्च संस्कार गुरु परम्परा, आदि विरक्त श्रीवैष्णवोचित उपदेश देने के बाद हाथ जोड़कर प्रभु से प्रार्थना करे—

जगत्पते श्रीश जगन्निवास —
प्रभो जगत्कारण रामचन्द्र।
नमोनमः कारुणिकाय तुभ्यं—
पदाब्जयोस्ते ममभक्तिरस्तु ॥
मनो मिलिन्दो मम पादपङ्कजे—
रमार्चिते ते रमतां भवे भवे।
पवित्र कीर्तिश्रवणे श्रुतिद्वयं—
त्वद्भक्तसङ्गोऽस्तु सदा ममप्रभो।

—श्रीवैष्णवमताब्जभाष्करः, १२१-१२२।

पुनः साष्टांग प्रणाम करे। आचार्य की आधीनता स्वीकार करते हुये उन्हें साष्टांग प्रणाम करे। आचार्य 'अस्माकं ये सुचरितानि तानि आचरितव्यानि नेतराणि' हमारे जो भले चरित्र हों उनका आचरण करना खोटे आचरणों का नहीं। इस प्रकार आज्ञा देकर आशीर्वाद दें। पश्चात् उपस्थित सभी पूज्य सन्त, विप्र, वृद्धों को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करें। आचार्य विरक्त शिष्य का नाम भी बदल दें।

Scanned by CamScanner

त्रिदण्डमुपवीतं च वासः कोपीन वेष्टनम् ।
शिक्यं कवचमित्येतद्बिभृयाद्यावदायुषम् ॥
सन्ध्या रवेरुपस्थानं योगाभ्यासं तथैव च ।
शिखोपवीतं वस्त्रं च नैव त्याज्यानि कर्हिचित् ॥

—भाल्लवीय ब्राह्मणोपनिषद्, ३ । ४ ।

त्यागी बनने में विचारणीय

(१) विषयासक्ति छूटे विना त्यागी न बने न बनावे ।

(२) त्यागी बनने पर सभी प्रकार की वासनायें त्याग दें ।

(३) त्यागी बनकर घर या कुटुम्ब परिवार का संबंध सर्वथा छोड़ दें ।

(४) अन्य शिष्य सेवकों की मोहमाया से निर्लिप्त रहे ।

(५) भगवत्सम्पत्ति का अपने दैहिक कार्य में कभी व्यय न करे और न ऐश आराम में किसी को खर्चने दे । उसकी पाई-पाई प्रभु और परमार्थ में ही लगावे । केवल प्रसादभूत देह रक्षणार्थ अत्यन्त आवश्यक वस्तु ले वह भी उतनी सेवा बजाकर ।

(६) स्वोपभोग के लिये धन संग्रहादिक कार्य त्याग दे ।

(७) त्यागी प्रभु या धर्म की सम्पत्ति अपने प्रयोजन के लिये स्वतन्त्र रूप से किसी को देता है तो लेने और देने वाला पापी बनकर नरक जाता है, सन्त या भगवत्सेवा के लिए दे सकता है ।

इनके शास्त्रीय वचन यति धर्म प्रकरण में संग्रह ग्रन्थ में देखने चाहिये। त्यागी वैष्णव सन्यासी का कर्तव्य केवल भजन करना और कराना ही है। मठ मन्दिरादि भी इसीलिए है, प्रभुका सेवक बनकर प्रभु की सम्पत्ति का प्रभु की सेवा में लगाना, प्रभु भक्तों को सुख पहुंचाने के लिए सचाई के साथ व्यय करना कराना और उसके हानि लाभ से निर्लेप रहकर प्रभु के संकेत पर अपना जीवन विताना ही त्यागी विरक्त वैष्णव का कर्तव्य है। महान्त बनकर मौज मज़ा उड़ाना विरक्त का काम नहीं है। आज हम अपना मार्ग भूलकर स्वार्थ लोलुप बने हैं, भगवान् के दास कहा कर भगवान् की सम्पत्ति का मनमाना भोग भोगते हैं, यह अत्यन्त घृणित काम है। हमें अब ऐसे ही शिष्य तैयार करने चाहिए जो जगत् का कल्याण करते हुए हमारा गन्दा मार्ग पुनः शुद्ध स्वच्छ बनावें। याद रहे विरक्त बनकर पुनः गृह प्रवेश या विषयासक्ति करने वाले को शास्त्रकारों ने सूकर-कूकर से भी नीच माने हैं।

❋ आतुर-सन्यासः ❋

यह संक्षिप्त विधान बताया गया है, जो पहले के वैष्णव नहीं हैं उन्हें प्रथम पञ्च सस्कार दीक्षा देकर तब सन्यस्त बनाने चाहिए। और पहले के वैष्णवों को भी तप्त मुद्रा मिल चुकी हो तो उसके सिवा चार अन्यथा पांचो संस्कार पुनः शुद्ध रूप में कर देने चाहिए। आतुर सन्यास में केवल श्रीराम

Scanned by CamScanner

मन्त्र से पञ्चसंस्कार देकर 'ॐ सन्यस्तं मया' भगवच्चरणे समर्पितम्' इतना वाणी या मन से ही कहा देना चाहिए और श्रीराममन्त्र से ही विरक्त वेष धारण कराकर मैं संसार से विरक्त हो गया ऐसा दृढ़ ज्ञान करा देना चाहिए।

अब मैं आप सबसे मानव स्वभाव जनित त्रुटियों के लिए पुनः क्षमा मांगता हूं, और यदि यह पद्धति प्रिय लगे तो इसके प्रचार की प्रार्थना करता हूँ। उचित संशोधन या परिवर्धन या परिवर्तन के लिए सम्प्रदाय के हित चिन्तक जो पथ प्रदर्शन या आदेश करेंगे तदनुकूल द्वितीय संस्करण में सुधार कर दिया जायगा, अभी तो यही बहुत है।

प्रेमाभक्तेः परमविमलं तत्त्वज्ञात्वाऽथ शुद्धो —
दीक्षां लब्ध्वा भजति सततं श्रीगुरोराज्ञया यः।
स श्रीरामं प्रणतसुखदं प्राप्य पूर्णामृताब्धिम्--
द्वन्दातीतो वसति भगवद्धाम साकेत लोके ॥
श्रीदीक्षा पद्धतिर्ह्येषा सम्प्रदायानुसारिणी।
सतां सन्तोषदा भूयादज्ञानां ज्ञानवर्द्धिनी ॥

श्रीरामः पातु माम्

श्रीराम जय राम जय जय राम

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु

सन्तचरणरेणु—

अवधकिशोरदास 'श्रीवैष्णव'

Scanned by CamScanner

पं० श्रीअवधकिशोरदास जी महाराज

श्रीरामनन्द आश्रम श्रीजनकपुर धाम द्वारा

संपादित अनुवादित एवं विरचित ग्रन्थ

१- आचार्यलीलामृत काव्य ।।)
२- श्रीरामानन्द नाटक ।।)
३- श्रीजनकपुर की झांकी १
४- आचार्य परिचर्या पथ ।=
५- महाराज जनक ।=
६- रा०मानसमेंमिथिलाधाम ।)
७- धर्मलोक के तारे श्रीरामानन्दाचार्य १)
८- हमारा धर्म और उसका वैज्ञानिक विवेचन ।।)
९- दिव्यधाम के पथ पर ।।)
१०- हमारी दिनचर्या ।।)
११- हमारी धार्मिकमर्यादा ।=)
१२- श्रीरामनाम लेखनविधि ।=)
१३- उपदेश वल्लरी (श्रीखोजीजी प्रणीत) ।।)
१४- श्रीरामार्चामाहात्म्यसटीक ।।)
१५- प्रेमसंकीर्तन भाग १,२,३ =)
१६- तिलक माला संकीर्तन =)
१७- आरती स्तुति संग्रह =)
१८- रसप्रेमभरी आरती =)
१९- प्रार्थना रत्नावली =)
२०- विनय चालीसा (अमूल्य)
... कत महिमा =)
२२- भजन प्रेम पुष्पांजलि ।=)
२३- भजन प्रेम लहरी गुजराती पद्य ।।)
२४- लोमश संहिता संतप्रिया व्याख्या (अमूल्य)
२५ दश-नामापाध १।)
२६ जयगुरुदेव (गुजराती) १।)
२७- श्रीजानकी-चालीसा =)
२८- दीक्षा-पद्धति ।।
२९- त्रिपादे महाविभूति-दिव्य धाम साकेत ।।)
३०- भागवत धर्म ।।)
३१- महात्मा श्रीजनकदुलारी शरणजी (अमूल्य)
३२- श्रीरामानन्द-ग्रन्थमाला का श्रीरामानन्दांक १।

❀ श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः ❀

श्री गुरुचरणकमलेभ्यो नमः

श्रीमते श्री रामानन्दाचार्याय नमः

❀ श्रीमते हनुमते नमः ❀

साकेत निवासी अनंत श्री स्वामी गोमतीदासजी महाराज द्वारा प्रचलित तथा श्री रघुनन्दनशरणजी महाराज

Scanned by CamScanner

श्रीरामानन्द साहित्य माला का क्रान्तिकारी

-: नूतन-प्रकाशन :-

१--भागवत-धर्म (विश्वधर्म) मूल्य ५० नये पैसे

श्रीवैष्णव धर्म विश्व के सभी प्राणियों के लिये शाश्वत सुख शान्ति देने वाला व्यापक धर्म है, विश्व के सभी मनुष्य उसकी छत्र छाया में आकर अपना परम कल्याण प्राप्त करें, यह बात बड़ी [illegible] समझाई गई है। एकबार अवश्यमेव पढ़िये।

२—दश-नामापराध मूल्य १ रु० ७५ नये पैसे

प्रभु के नाम जापकों को संकीर्तन साधना के प्रबल विघ्नों से बचकर कैसे चलना चाहिये इस तत्त्व को समझाने वाली अपूर्व पुस्तक है, जिसके लिये हजारों सन्तभक्त तरसते हैं।

३--त्रिपाद्विभूति--दिव्य साकेत धाम मूल्य ५० नये पैसे

प्रभु के दिव्य धाम के बारे में विलक्षण बातें इसमें पढ़कर आप कृतार्थ हो जायँगे।

४--युगद्रष्टा सन्त मूल्य ५० नये पैसे

युगान्तरकारी सन्त कैसे होते हैं तथा उनके द्वारा लोक कल्याण कैसे होता है आप इसमें पढ़िये।

५—महात्मा श्रीजनकदुलारीशरणजी अमूल्य

६—श्रीजानकी चालीसा १२ नये पैसे

श्रीवैष्णवों की सभी पुस्तकें मँगाने का एकही पता:—

श्रीवैष्णव साहित्य संस्थान	**श्रीरामानन्द—आश्रम**
श्रीजानकीघाट, अयोध्या	जनकपुर धाम पो० जयनगर
(उत्तर-प्रदेश)	जि० दरभंगा (विहार)

Scanned by CamScanner